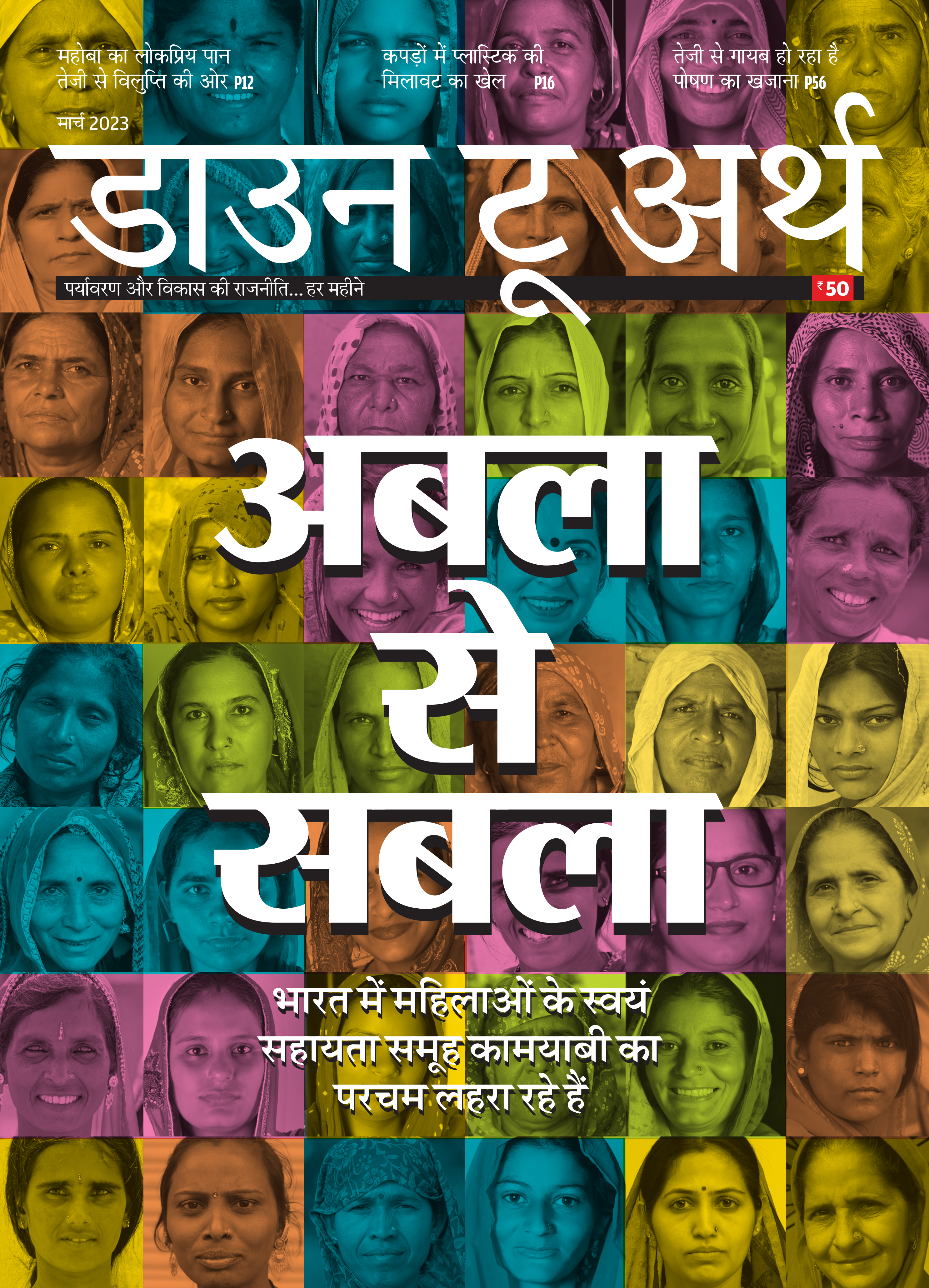

महोबा का लोकप्रिय पान
तेजी से विलुप्ति की ओर P12

कपड़ों में प्लास्टिक की
मिलावट का खेल P16

तेजी से गायब हो रहा है
पोषण का खजाना P56

मार्च 2023

डाउन टू अर्थ

पर्यावरण और विकास की राजनीति... हर महीने ₹50

अबला से सबला

भारत में महिलाओं के स्वयं
सहायता समूह कामयाबी का
परचम लहरा रहे हैं

Down To Earth CSE gobar times

YOUNG ENVIRONMENTALIST

young.downtoearth.org.in

Air & Mobility
Water
Climate Change
Waste
Food
Energy
Biodiversity
Etc

A website on
Environment and Development
for the Young and the Curious

सुनीता नारायण

चक्रीय अर्थव्यवस्था के संकेत

केन्द्रीय वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने 2023-24 के अपने बजट भाषण में इस बात की घोषणा की कि सरकार का उद्देश्य "हरित विकास" का है, जिसे हरित ऊर्जा, जैविक कृषि, गतिशीलता, निर्माण और ऊर्जा उपलब्धता के विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से क्रियान्वित किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि इससे अर्थव्यवस्था की कार्बन तीव्रता में कमी आएगी और रोजगार के अवसरों में बड़े पैमाने पर बढ़ोतरी होगी। इस वर्ष ऊर्जा-संक्रमण की अनिवार्यता के प्रति सरकार की ओर से किसी तरह का कोई संकोच नहीं दिखाया गया है। ऐसा पहली बार हुआ है। आप यह तर्क दे सकते हैं कि यह अभी भी स्पष्ट नहीं है कि ऊर्जा-संक्रमण के लिए 35,000 हजार करोड़ रुपए के बजटीय आवंटन को किस प्रकार खर्च किया जाएगा। लेकिन मेरा यह मानना है कि यह बजट हमें प्रत्यक्षतः कुछ जोखिम से भरा और साहसिक कार्यक्रम उपलब्ध करा रहा है जिनको साथ-साथ आजमाने से पूरे परिदृश्य में बड़ा बदलाव आ सकता है। पहला, यह बायोगैस (मवेशियों के खाद के उपयोग से निर्मित और ग्रामीण भारत में पारंपरिक रूप से प्रयुक्त) और इसके उन्नत संस्करण संपीड़ित बायोगैस (जिसे सामान्यतः जैव-संपीड़ित प्राकृतिक गैस या बायो-सीएनजी के नाम से भी जाना जाता है) को एक गति प्रदान करता है। वित्त मंत्री ने 10,000 करोड़ रुपए के निवेश से समुदाय या समूह-आधारित 300 बायोगैस संयंत्रों और 200 बायो-सीएनजी संयंत्रों को स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इनमें 75 बायो-सीएनजी संयंत्र शहरों में बनाए जाएंगे। उन्होंने यह भी माना है कि स्वच्छ ऊर्जा पर थोपे गए व्यापक करों को युक्तिसंगत बनाने की जरूरत है और इस संभावना के संकेत दिए हैं कि सरकार बायो-सीएनजी के क्रय और विपणन को सुनिश्चित के लिए सभी प्राकृतिक और बायोगैस कंपनियों के निर्णयों में आवश्यकतानुसार हस्तक्षेप कर सकती है। दूसरा, उन्होंने वाहन परिमार्जन नीति (वाहन स्क्रैपिंग पॉलिसी) के अधीन केंद्र सरकार के पुराने और प्रदूषण फैलाने वाले वाहनों को स्थानांतरित करने के लिए राशि का प्रावधान किया है। और तीसरा, सेप्टिक टैंकों की यान्त्रिक सफाई और सूखे तथा गीले कूड़ों के प्रबंधन पर बजट का विशेष फोकस है। यदि इन सभी को एक श्रृंखला में जोड़ कर देखें तो यह समझ सकते हैं कि सरकार किस प्रकार चक्रीय अर्थव्यवस्था को क्रियान्वित करने पर विचार कर रही है। बायो-सीएनजी के मुद्दे को ही ले लें। सरकार के कार्यक्रम "सस्टेनेबल अल्टरनेटिव्स टुवर्ड्स ऑटोमोबाइल ट्रांसपोर्टेशन (एसएटीएटी)" के अधीन ऐसी क्रियाशील योजनाएं हैं,जहां कंपनियां कृषि-अवशिष्टों-मुख्य रूप से चावल के सूखे पुआलों का उपयोग कर रही हैं। इन्हें पंजाब और हरियाणा के किसानों द्वारा शहर के कचरों के साथ बायो-सीएनजी के उत्पादन के लिए जलाया जाता है। उसके बाद इस गैस का उपयोग वाहनों और सिटी बसों के परिचालन के लिए किया जाता है। ऐसे शहरों में जो ठोस कचरा प्रबंधन में पिछड़ रहे हैं, बायो-सीएनजी कचरा प्रबंधन को एक नया रास्ता दिखाने में सक्षम हैं। हमारे शहरों में कूड़ा फेंकने की जगहें कम होने लगी हैं। ऐसे में एकमात्र विकल्प यही है कि कचरे को कमाई का माध्यम बनाया जाए। वित्तमंत्री ने अपने भाषण में भी इसी बिंदु पर जोर दिया है। लेकिन बायो-सीएनजी परियोजनाएं ठीक से काम करें, इसके लिए शहरों को कचरों के स्रोतों पर ही पृथक्करण की कला सीखने की आवश्यकता है। बायो-सीएनजी संयंत्रों को उच्चस्तरीय जैविक (या गीले) कचरे की आवश्यकता होती है। हम जानते हैं कि किसी शहर में पाया जाना वाला 40 से 80 प्रतिशत कचरा गीला होता है लेकिन यह प्लास्टिक और दूसरे सूखे कचरे से मिश्रित हो जाता है। इसका कारण यह है कि हम उसी स्तर पर इसका पृथक्करण नहीं करते हैं, जहां इसकी आवश्यकता होती है। इसलिए बायो-सीएनजी संयंत्र या किसी अन्य योजना के लिए जो इन "कचरे" से ऊर्जा-उत्पादन की प्रक्रिया आरंभ कर उनका मूल्य संवर्धित करेगा, शहरों के लिए यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि कचरे का पृथक्करण हरेक परिवार के स्तर पर हो और शहर की सफाई-योजना इस उद्देश्य से बनाई गई हो कि पृथक्करण के बाद गीले कचरे को प्रसंस्करण के लिए उपयुक्त परिवहन की व्यवस्था हो। यह कार्य असंभव भी नहीं है। इंदौर (जहां भारत का पहला स्वनिर्भर बायो-सीएनजी संयंत्र स्थापित है) ने इस बात को सफलतापूर्वक साबित किया कि सिटी बसों को ईंधन बेचना सफाई प्रबंधन के लिए आर्थिक रूप से खासा लाभकारी है।

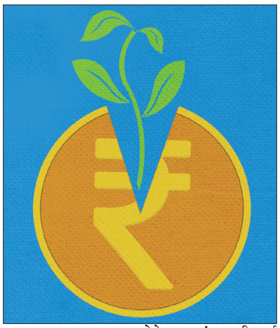

योगेन्द्र आनंद / सीएसई

बायो-सीएनजी संयंत्रों के उत्पाद खमीरयुक्त जैविक खाद होते हैं, जिन्हें जैविक उर्वरा के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इन बायो-सीएनजी परियोजनाओं को उन्नत चरण पर ले जाना एक चुनौतीपूर्ण काम है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कंपोस्ट और खमीरयुक्त जैविक खादों के लिए मानकीकरण सुनिश्चित करना है ताकि इन उप उत्पादों का अधिकतम उपयोग किया जा सके। यह उप उत्पाद रसायनिक खादों को दिए जाने वाले अनुदानों को पूरी तरह समाप्त न भी किया जा सके तो कम करना सुनिश्चित अवश्य कर सकते हैं। सेप्टिक टैंकों की सफाई को लेकर भी बजट में यही निर्देशात्मक संकेत दिखाई देता है। केवल भूमिगत सीवेज के निर्माण पर खर्च करने के बजाए यहां भी कचरे की चक्रीय अर्थव्यवस्था पर बजट का वित्तीय जोर स्पष्ट दृष्टिगत होता है। मानव मलमूत्र को भी ट्रीटमेन्ट के लिए ले जाया जाता है और गाद को खाद बनाने में दोबारा इस्तेमाल किया जाता है। बजट 2023-24 के अनुसार आगामी वित्तीय वर्ष में प्राकृतिक कृषि के लिए 10,000 ऐसे जैविक-निविष्ट संसाधन केंद्र (बायो-इनपुट रिसोर्स सेंटर) बनाने का उद्देश्य है। बजट में वैकल्पिक उर्वरा और "रासायनिक उर्वरा के संतुलित उपयोग" का भी प्रावधान है, लेकिन जहां तक गैर-रासायनिक खादों के समान मात्रा में उपयोग की बात है तो यह बजट इस बारे में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहता है। इसी प्रकार, वायु प्रदूषण, लोहा और इस्पात क्षेत्र को कार्बन रहित (डीकार्बनाइज) करने की दृष्टि से वाहन स्क्रैपिंग पॉलिसी के बड़े लाभ हैं। इसे सोचने व समझने के रूप में योजनाबद्ध करने की आवश्यकता है ताकि सबसे अधिक प्रदूषण फैलाने वाले वाहन जैसे की व्यवसायिक ट्रकों को चरणबद्ध तरीके से हटाया जा सके और उन्हें अधिक स्वच्छ विकल्पों के साथ बदला जा सके। आज भारत स्टेज (बीएस) IV मानकीकरण के साथ वाहनों का उत्पादन किये जाने के पीछे भी यही उद्देश्य है। इस योजना का एक अतिरिक्त लाभ यह है कि परित्यक्त वाहनों के कबाड़ लोहे के उपयोग से इस्पात-क्षेत्र में कार्बन-उत्सर्जन की मात्रा को कम किया जा सकता है। यह एक बड़ा लाभ है और इसके महत्वपूर्ण और दूरगामी परिणाम सामने आने की आशा है।

इस अंक में

22 **आवरण कथा**
राजनीतिक और आर्थिक ताकत बन चुके स्वयं सहायता समूह कामयाबी की नई इबारत लिख रहे हैं

08 **बिगड़ा बजट**
अमृतकाल के पहले बजट में किसानों को मिली निराशा

12 **पान का अवसान**
महोबा का प्रसिद्ध देशावरी पान जीआई टैग के बाद भी उपेक्षित

16 **कपड़ों में सेंध**
खूब फल-फूल रहा है कपड़ों में मिलावट का धंधा

43 **कला दीर्घा**
भूकंप के जख्म

44 **बातचीत**
भील चित्रकारी को मुखर करतीं शांता भूरिया

51 **बैठे ठाले**
जीपीटी चाट भंडार

58 **अंतत:**
जलवायु के नए शिकार

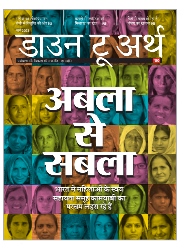

आवरण डिजाइन अजीत बजाज

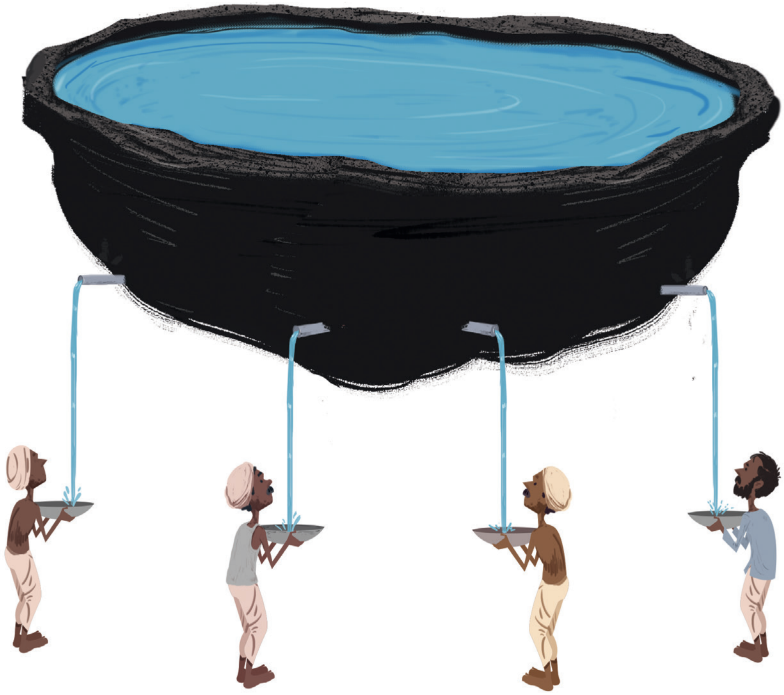

46
पुस्तक समीक्षा
परशुराम मिश्रा की जीवन यात्रा का दस्तावेज

48
पर्यटन का बोझ
हिमालयी राज्यों में टिकाऊ पर्यटन की चुनौती

52
फोटो फीचर
राजस्थान के खींचन गांव में खिंचे चले आते हैं विदेशी परिंदे

आहार संस्कृति
गुणों की खान काली गाजर
56

डाउन टू अर्थ

संस्थापक संपादक अनिल अग्रवाल
संपादक सुनीता नारायण
प्रबंध संपादक रिचर्ड महापात्रा
एसोसिएट संपादक अनिल अश्विनी शर्मा
वरिष्ठ उपसंपादक भागीरथ
विशेष संवाददाता राजू सजवान
क्रिएटिव डायरेक्टर अजीत बजाज
रिपोर्टिंग टीम
विवेक मिश्रा, अक्षित संगोमला, तरन देओल, शगुन, शुचिता झा, रोहिणी कृष्णमूर्ति, हिमांशु नितनवरे, सीमा प्रसाद और जुम्बिश
सूचना एवं शोध सहयोग किरण पांडे
www.indiaenvironmentportal.org.in टीम
कला संपादक चैतन्य चंदन
सहायक कला संपादक संजीत कुमार
डिजाइन टीम
श्रीकृष्ण, रितिका बोहरा, योगेंद्र आनंद, तरुण सहगल
फोटो एडिटर विकास चौधरी
फोटो लाइब्रेरी अनिल कुमार
हिंदी सहयोग
सुरेंद्र सिंह, जयदेव शर्मा, ललित मौर्य, दयानिधि मिश्रा
प्रोडक्शन राकेश श्रीवास्तव, गुंधर दास
संपादन परामर्श
अनुमिता रायचौधरी, विभा वार्ष्णेय
विज्ञापन संपर्क ज्योति घोष
jghosh@cseindia.org
सब्सक्रिप्शन संपर्क केसीआर राजा
raja@cseindia.org

वर्ष 5, अंक 5, कुल पृष्ठ 60
सम्पादकीय, सब्सक्रिप्शन और विज्ञापन : सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्यूनिकेशंस, 41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062
फ़ोन : +91-11-29955124, 29956110, 29956394, 29956399
फ़ैक्स : +91-11-29955879
ई मेल : editor@downtoearth.org.in

© 2023 सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्युनिकेशंस सर्वाधिकार सुरक्षित (पूरे विश्व के लिए)। किसी भी प्रकार से पुन : उत्पादन प्रतिबंधित।

सोसायटी फॉर एनवारनमेंटल कम्युनिकेशंस के लिए रिचर्ड महापात्रा द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
तारा आर्ट प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड, ए-46-47, सेक्टर-5, नोएडा-201301, उत्तर प्रदेश से मुद्रित और 41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062 से प्रकाशित।

सब्सक्राइब करने के लिए फोन करें 011-4061 6000 पर या लॉग इन करें **www.downtoearth.org.in/subscribe**

डाउन टू अर्थ संपादकीय पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की किसी भी विषयवस्तु का समर्थन नहीं करता है। सभी विवाद सिर्फ दिल्ली/नई दिल्ली के प्रतिस्पर्धी न्यायालय और फोरमों के विशिष्ट न्यायाधिकार का विषय है

चिट्ठी पाती

मेरी जुबानी

गोबर से लेकर अक्षर तक ने बनाया मजबूत

हीर बाई,
जूनागढ़, गुजरात

जंगल, आदिवासी ये शब्द सुनने में जितने सुखद लगते हैं, उस आबोहवा का निवासी बनना उतना ही मुश्किल है। इसकी वजह यह है कि जंगल के लोगों की किस्मत वे तय करते हैं जिनके हाथों में जंगल को मनचाहे तरीके से काटने की कुल्हाड़ी होती है। आदिवासी कितने सभ्य हों इसकी वसीयत जंगलों को उजाड़ कर नए बसे शहर के बाशिंदे बनाते हैं। हर आदिवासी समुदाय के बच्चों की तरह मेरा बचपन भी कठोर श्रम और बुनियादी जरूरतों को पूरा करने की जुगत में बीता। लेकिन, इसी श्रम और सीमित संसाधनों में जीवन जीने की आदत ने मुझे मानसिक और शारीरिक मजबूती दी। साथ ही अपने हालात और अधिकार को लेकर सजग होने लगे कि आदिवासियों की हालत कब सुधरेगी।

बड़ी होने के साथ मुझमें इस बात को लेकर मानसिक मजबूती आती गई कि मैं अपने समाज को खास कर महिलाओं को उस मुकाम तक ले जाऊं जहां पर इनका जीवनस्तर देश के अन्य इलाकों के बाशिंदों से बराबरी कर सके। मेरा समुदाय जूनागढ़ के तलाला तहसील के मधुपुर जांबूर गांव के जंगलों में रहता है। हम सालों तक घासफूस के झोपड़ों में ही अपनी गुजर-बसर करते रहे। एक उस राह की खोज थी जो मुझे आगे बढ़ाए। उन्हीं दिनों मेरा संपर्क "आगा खान फाउंडेशन" से हुआ। इस फाउंडेशन के साथ जुड़ते ही मेरे जीवन की दिशा बदल गई। इसने मुझे सिखाया कि मैं कैसे खुद को और अपने समुदाय की महिलाओं को आत्मनिर्भर बना सकती हूं। मैंने गांव की आदिवासी महिलाओं के साथ मिलकर खाद बनाने का काम शुरू किया। हमारे समुदाय में हर परिवार के पास मवेशी थे। हम मवेशियों के उत्पादों का बेहतर इस्तेमाल करना नहीं जानते थे। खेतों में श्रम कर ही हमारी पीढ़ी अपना जीवन गुजार रही थी। खाद बनाने का काम शुरू करते वक्त यह आशंका तो थी कि भला इसका क्या फायदा मिलेगा। लेकिन, यह इतना फायदेमंद रहा कि आज के दौर में हमारे गांव के आसपास के 14 गांवों तक फैल गया है। खाद बनाने का यह कौशल महिलाओं तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि गांव के लोगों का अब यह पसंदीदा काम बन गया है।

जंगल के उत्पादों के साथ मवेशी हमारी अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनने लगे। महिलाओं ने मवेशी पालन में रुचि दिखानी शुरू की तो मैंने दौड़-भाग कर उनके लिए कर्ज का इंतजाम किया। कुछ महिलाओं ने नीम का तेल बनाना शुरू किया। मेरी कोशिश यही रही कि हर महिला के आसपास की कुदरती चीजें उसकी आमदनी का भी जरिया बने। आमदनी के साथ आरोग्य भी मेरी प्राथमिकता थी। अपने आस-पास के संसाधनों का इस्तेमाल कर खुद को सेहतमंद रखा जा सकता है। महिलाओं ने अपने स्तर पर भी खोज करनी शुरू कर दी कि खेतों से लेकर मवेशी के उत्पादों में से कौन-कौन सी चीजें हमारे शरीर को निरोगी रखने में मदद कर सकती हैं। अभी तक हमारा आदिवासी समुदाय अंगूठा छाप था। इस वजह से हम लोग अपने हिसाब-किताब में ठगे जाते थे। मेरी पढ़ाई भी पास के सरकारी स्कूल से दूसरी जमात तक ही हुई थी। मैं समझ चुकी थी कि बिना उचित शिक्षा के हमारे समुदाय की प्रगति संभव नहीं है। मैं जब बहुत छोटी थी तभी मेरे माता-पिता का देहांत हो गया था। मुझे दादी ने पाला-पोसा। मैंने बड़े होते हुए अपने समुदाय की गरीबी को महसूस किया। हम जंगलों में फूस की झोपड़ी में रह कर दूसरों के खेतों में मजदूरी करते थे। अपने अधिकारों को लेकर समझ बढ़ने के साथ हमारी मुश्किलों में बहुत कमी आई है। अब हम सिर्फ मजदूर नहीं अपने उत्पादों के मालिक भी हैं। श्रम और शोषण के बीच की खाई को कमतर कर रहे हैं। गोबर से लेकर अक्षर तक के महत्व को अब मैं और हमारा समुदाय समझ चुका है।

यह पाठकों का मंच है। अपने विचार और सुझाव आप *डाउन टू अर्थ* के साथ साझा कर सकते हैं। हमें लिखेंः editor@downtoearth.org.in

विडंबना को संबोधित

डाउन टू अर्थ की फरवरी, 2023 अंक की कवर स्टोरी में दिया गया शीर्षक आज की विडंबनाओं के संदर्भ में सटीक है। आप सभी को बधाई।

महावीर, ई-मेल द्वारा

फायदा में नुकसान

फरवरी, 2023 के अंक में प्रकाशित "मेरी जुबानी" कॉलम में बताई गई बातें अक्षरशः सही हैं। मैं भी दल्ली राजहरा कई बार गया हूं। वहां आप हर समय धूल से स्नान कर रहे होते हैं। ऐसा लगता है जैसे हम किसी धूल के रेगिस्तान में आ गए हैं। वहां के प्रदूषण की हालत बेहद दयनीय और बदतर है। कोई कारण नहीं है कि इसे कम किया जा सकता है, बस इच्छा शक्ति की जरूरत है। औद्योगिक नगरी होने के कारण हर कोई वहां से अधिक से अधिक लाभ तो पाना चाहता है, लेकिन वहां काम करने वाले कामगारों या वहां के स्थानीय निवासियों के बारे में सोचने-समझने की जरूरत नहीं समझता है। यही कारण है कि दल्ली राजहरा सबसे अधिक प्रदूषित शहरों में गिना जाता है। मेरी आपके संपादकीय मंडल से गुजारिश है कि पाठकों के लिए कुछ और कॉलम शुरू किए जाएं ताकि वे अपनी बातें "मेरी जुबानी" की तर्ज पर रख सकें। अब तक अनुभव कहता है कि इसी तरह से जागरुकता का विस्तार होता आया है।

नित्यव्रत राय, कुम्हारी, छत्तीसगढ़

जवाब

आपके सुझाव को हमने नोट कर लिया है। इस पर अवश्य हम विचार करेंगे। पत्र लिखने के लिए धन्यवाद।

संपादक

पहाड़ और सरकार

जोशीमठ की घटना पर सुनीता नारायण का संपादकीय बहुत ही सही आकलन है। जिस तरह से उन्होंने 2013 की बातें हम पाठकों को बताई हैं, यह तो आंख खोल देने वाली हैं। हर ऐसे हादसे हम थोड़े समय बाद भूल जाते हैं। आम लोगों को यह पता होना चाहिए कि कैसे सरकार और उद्योगपति अपने मुनाफे के लिए पूरा हिमालय ही दांव पर लगाने में कोई हिचक नहीं रखते। उन्हें हिमालय के नफा-नुकसान के पर्यावरणीय पहलुओं से कोई लेना-देना नहीं है। वास्तविकता यह है कि पहाड़ और वहां के लोग ही नहीं बचेंगे तो फिर किसके काम आएगी उनकी बिजली। अब वक्त आ गया है कि देश के नीति-निर्देशक जल-विद्युत के उत्पादन पर गहन विचार-विमर्श करें।

राजेश त्रिपाठी, रायगढ़, छत्तीसगढ़

सच का सामना

आपकी पत्रिका के फरवरी, 2023 की कवर स्टोरी और उसमें तमाम उत्कृष्ट वैज्ञानिकों द्वारा बताई गई बातें मेरे लिए बहुत ही अहम हैं। यह सब बातें हमें आम अखबार या अन्य पत्र-पत्रिकाओं में देखने या पढ़ने को नहीं मिलतीं। ऐसा नहीं है कि स्टोरी प्रकाशित नहीं होती लेकिन वह सब सच्चाई को छिपाने वाली होती हैं। ऐसी स्थिति में आपकी कवर स्टोरी ने ही हिमालय की असलियत उजागर की है। बस अब हम इंतजार कर रहे हैं कि इस सच्चाई को राज्य से लेकर केंद्र सरकार भी समझे। और, जल-विद्युत के पीछे भाग रहे उद्योगपतियों पर आवश्यक लगाम कसी जाए। साथ ही हर वह कार्रवाई की जाए जिससे भविष्य में हिमालय का कम से कम दोहन हो। अन्यथा आने वाले समय में हिमालय में होने वाली प्राकृतिक घटनाओं की संख्या में और इजाफा होगा। यह स्थिति किसी भी हालत में अच्छी नहीं होगी।

सत्यनारायण प्रसाद, भोपाल, मध्य प्रदेश

पाठकों की पहली जरूरत

मैं पिछले दो सालों से यह आकलन कर रहा हूं कि आपकी पत्रिका प्रतिवर्ष अपनी सालगिरह पर किसी विशेष विषय को आधार बनाकर पूरा का पूरा अंक ही समर्पित करती है। इस तरह के अंक हमारे लिए बहुत ही संग्रहणीय होते हैं। और जब इस प्रकार के अंक प्रकाशित होते हैं तो हमारे जैसे छात्रों के लिए बहुत ही उपयोगी होते हैं। मैं आपको यह सुझाव देना चाहूंगा कि इस तरह के अंक कम से कम साल में दो से तीन बार निकालें तो हम पाठकों के लिए बहुत ही अच्छा रहेगा। यह भी बताना चाहूंगा कि इस तरह के किसी विशेष विषय पर जब आपका अंक प्रकाशित होता है तो उसकी मांग भी बहुत अधिक होती है। उम्मीद है, आप इस विषय पर जरूर सोचेंगे।

छोक्के कुमार, बैढ़न, मध्य प्रदेश

जवाब

आपके सुझाव पर अवश्य हम विचार करेंगे। पत्र लिखने के लिए धन्यवाद।

संपादक

विज्ञान और व्यंग्य

डाउन टू अर्थ एक विज्ञान पत्रिका है। इसके बावजूद पत्रिका में नियमित रूप से प्रकाशित "बैठे ठाले" कॉलम बहुत ही सराहनीय है। आम तौर पर इस तरह की पत्रिका में ऐसे व्यंग्य नहीं होते हैं। आपके व्यंग्य लेखक को हमारी ओर से बधाई।

प्रेम सिंह, पाली, राजस्थान

भूल सुधार

डाउन टू अर्थ के फरवरी अंक के आवरण चित्र का क्रेडिट भूलवश विजय पांडेय के स्थान पर विकास चौधरी प्रकाशित हो गया है। हम इस भूल के लिए क्षमाप्रार्थी है। **संपादक**

डाउन टू अर्थ

पत्रिका के बारे में अपने सुझाव आप इस पते पर भेज सकते हैं-

सुनीता नारायण,
संपादक, डाउन टू अर्थ,
41, तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली-110062

आप हमें ई मेल भी कर सकते हैं:
editor@downtoearth.org.in

यहां भी हमसे जुड़े रहिए

@down2earthHindi | www.downtoearth.org.in/hindistory | @hindidown2earth

www.youtube.com/channel/UCIB_MLJZL0T_s5OUuqhmbVA

“**मैं 2023-24** का बजट पेश करती हूं। अमृत काल में यह पहला बजट है।” केंद्रीय बजट को पेश करने की संवैधानिक कवायद को निभाते हुए वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण की यह पहली पंक्ति परंपरा से हटकर थी। इसमें देश के वार्षिक वित्तीय विवरण को एक ऐसे दस्तावेज में बदलने की बात कही गई, जिसमें भविष्य के लिए विजन दिखे। यह प्रथा पिछले साल से ही शुरू हुई है।

1 फरवरी, 2022 को अपने बजट भाषण में सीतारमण ने 2047 में देश के 100वें स्वतंत्रता वर्ष को चिह्नित करने के लिए “अमृत काल” को प्रयुक्त किया। इस शब्द को उन्होंने विकास के अगले 25 वर्ष के तौर पर परिभाषित किया। उन्होंने 2022-23 के बजट को इस काल के दौरान “अर्थव्यवस्था को चलाने की नींव रखने और एक खाका तैयार करने” वाला बताया। उन्होंने बजट में इस “काल” के लिए विकास सिद्धांतों का पहला सेट पेश करने का दावा किया, “यह दृष्टिकोण (अमृत काल का) तीन चीजों पर केंद्रित हैः पहला, नागरिकों, विशेष रूप से युवाओं को उनकी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करना; दूसरा, विकास और रोजगार के सृजन को गति प्रदान करना; और तीसरा, मैक्रो-इकोनॉमिक स्टैबिलिटी को मजबूत बनाना।”

बजट 2023-24 का संदर्भ ही परिभाषित करता है कि सत्तारूढ़ राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन के मई 2024 में फिर से चुनाव कराने से पहले यह आखिरी पूर्ण बजट है। कोविड काल के बाद का पहला बजट होने के नाते उम्मीदें थीं कि केवल महामारी के चलते मिलीं असफलताओं का जवाब देने के बजाय, यह बजट भारत के विकास को गति देने के लिए खाका तैयार करेगा। इसका यह भी अर्थ है कि आर्थिक संकट का वक्त अब खत्म हो चुका है और बजट को अब महामारी से पहले के आर्थिक संकेतकों को ध्यान में रखते हुए तैयार करने पर ध्यान देना चाहिए।

लेकिन, महामारी से पहले आर्थिक स्थिति कैसी थी? सीधे शब्दों में कहें तो भारत गंभीर संकट की स्थिति में था। दिल्ली स्थित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू)

अमृतकाल में ‘अमृत’ विहीन

केंद्रीय बजट 2023-24 में तकरीबन हर तरह की सब्सिडी में कटौती कर ली गई है, जिसके बाद ग्रामीण आबादी के लिए इस बजट में कुछ खास नहीं बचा है

भागीरथ, हिमांशु एन और शगुन नई दिल्ली

इलस्ट्रेशनः योगेन्द्र आनंद / सीएसई

में अर्थशास्त्र के शिक्षक हिमांशु 2016-17 से 2019-20 की अवधि को "ग्रेट इंडियन स्लोडाउन" का नाम देते हैं। इस दौरान पूरी अर्थव्यवस्था धीमी हो गई, गंभीर कृषि संकट की शुरुआत हुई और निजी उपभोग व्यय, जो सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 60 प्रतिशत होता है, सामान्य तौर पर घट गया, जिसने पूरी अर्थव्यवस्था को नीचे की ओर खींच लिया। कोविड महामारी ने इस गिरावट को और तेज कर दिया। इंडियन एक्सप्रेस के एक कॉलम में हिमांशु लिखते हैं, "2021-2022 में वास्तविक रूप से प्रति व्यक्ति आय अभी भी 2018-2019 के स्तर से नीचे है। 2016-2017 और 2021-2022 के बीच समग्र विकास पिछले चार दशकों में किसी भी पांच साल की अवधि के लिए 3.7 प्रतिशत के निम्नतम स्तर पर है।" इसलिए, अधिकांश ग्रामीण आबादी एक गंभीर आर्थिक मंदी के दौर से गुजर रही है। केंद्रीय बजट 2023-24 को इस वर्ग पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए था, ताकि न केवल उन्हें अधिक कमाई करने में सक्षम बनाया जा सके, बल्कि उच्च आर्थिक विकास हासिल करने के लिए निजी खपत को भी बढ़ावा दिया जा सके। लेकिन, इस बजट ने ऐसी कोई बड़ी पेशकश नहीं की।

सब्सिडी में भारी कटौती

इस बजट में सब्सिडी योजनाओं के लिए किए गए आवंटन में भारी कटौती देखी गई। बल्कि कुछ महत्वपूर्ण योजनाओं को केवल टोकन राशि ही प्राप्त हो पाई। सरकार ने खाद्य सब्सिडी के बजट में 89,844 करोड़ रुपए की कटौती करते हुए 1,97,350 करोड़ रुपए कर दिया है। 2022-23 के संशोधित बजट अनुमान में खाद्य सब्सिडी 2,87,194 करोड़ रुपए थी। यानी खाद्य सब्सिडी के बजट में 31 प्रतिशत से अधिक कटौती हुई है।

इसी तरह उर्वरकों को दी जाने वाली सब्सिडी में भी 50,121 करोड़ रुपए की कटौती हुई है। सरकार ने उर्वरकों की सब्सिडी के लिए 2023-24 के बजट में 1,75,099 करोड़ रुपए का प्रावधान किया है, जबकि 2022-23 के संशोधित अनुमानों में यह बजट 2,25,220 करोड़ रुपए था। सरकार उर्वरकों पर पोषक तत्व आधारित सब्सिडी और यूरिया पर सब्सिडी देती है। पोषक तत्व आधारित सब्सिडी को 71,122 करोड़ (संशोधित अनुमान 2022-23) से घटाकर 44,000 करोड़ रुपए और यूरिया सब्सिडी को 1,54,097 करोड़ से घटाकर 1,31,099 करोड़ रुपए कर दिया है। कुल मिलाकर इन दोनों सब्सिडी की धनराशि 22 प्रतिशत कम हुई है।

गरीबों को दी जाने वाली लिक्विफाई पेट्रोलियम गैस (एलपीजी) सब्सिडी में भी 75 प्रतिशत की कमी कर दी है। 2022-23 के संशोधित अनुमान 9,170 करोड़ से घटाकर 2,257 करोड़ रुपए कर दी गई है यानी 6,913 करोड़ रुपए की भारी भरकम कटौती की गई है।

खाद्य, उर्वरक और पेट्रोलियम उत्पाद पर दी जाने वाली सब्सिडी के अतिरिक्त सरकार 15 योजनाओं के लिए ब्याज सब्सिडी भी देती है। ब्याज सब्सिडी की इन योजनाओं के बजट में भी करीब 10 हजार करोड़ रुपए की कटौती हुई है। 2022-23 के संशोधित अनुमानों में इन सब्सिडी योजनाओं पर 37,536 करोड़ रुपए का आवंटन किया

महत्वपूर्ण आंकड़े

बजट 2023-24 में प्रमुख मंत्रालय और सरकारी योजनाओं के लिए आवंटन

कृषि : मूल्य समर्थन योजना में बड़ी कटौती

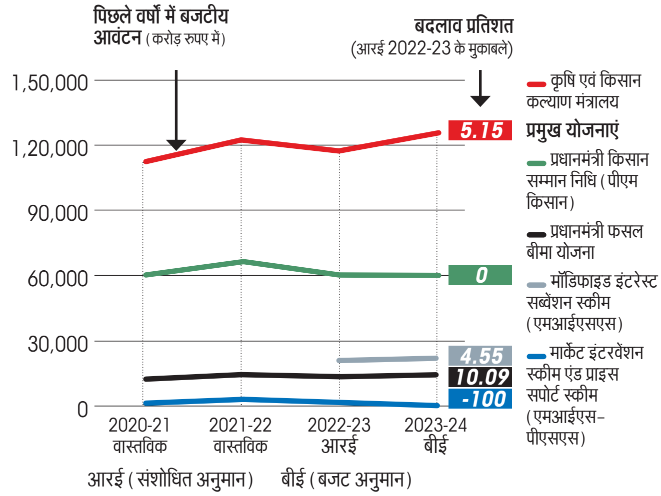

भोजन: सब्सिडी, सार्वजनिक वितरण बजट घटाया गया

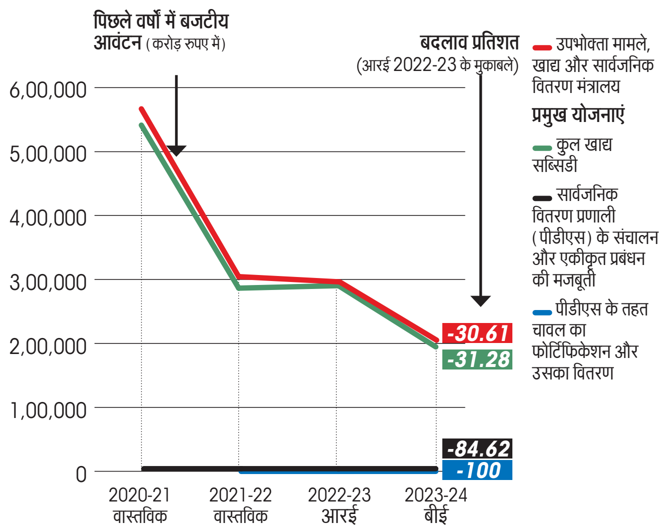

भारी उद्योग: ई-वाहनों को बढ़ावा

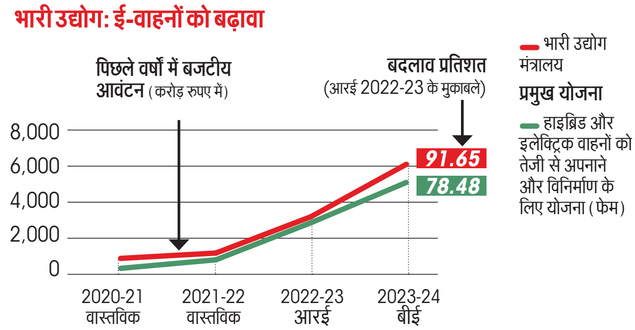

स्रोत: वित्त मंत्रालय

पर्यावरण: प्रमुख जलवायु योजनाओं के लिए कोई बजट नहीं

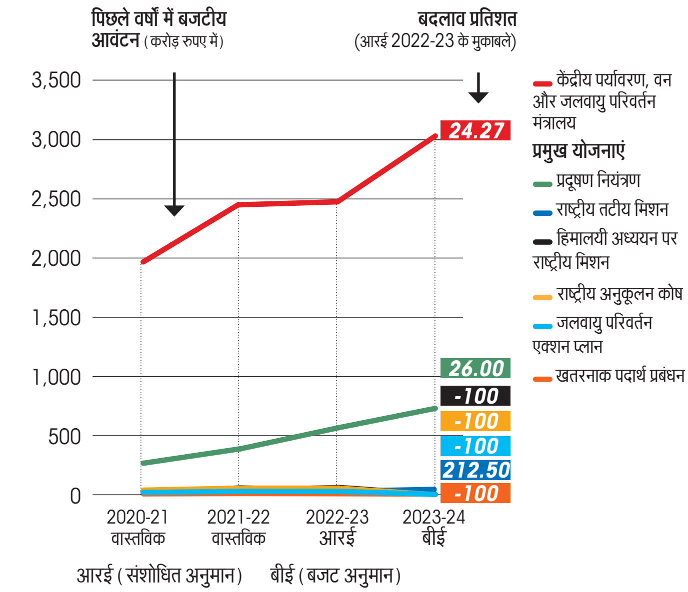

स्वास्थ्य : क्षमता निर्माण पर ध्यान

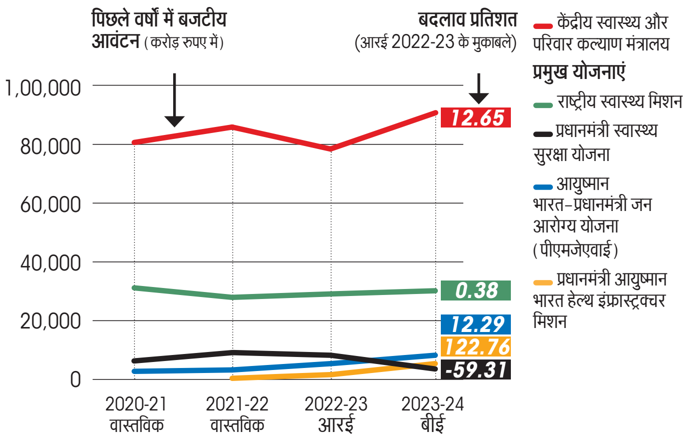

ग्रामीण: हिट होती रोजगार योजना

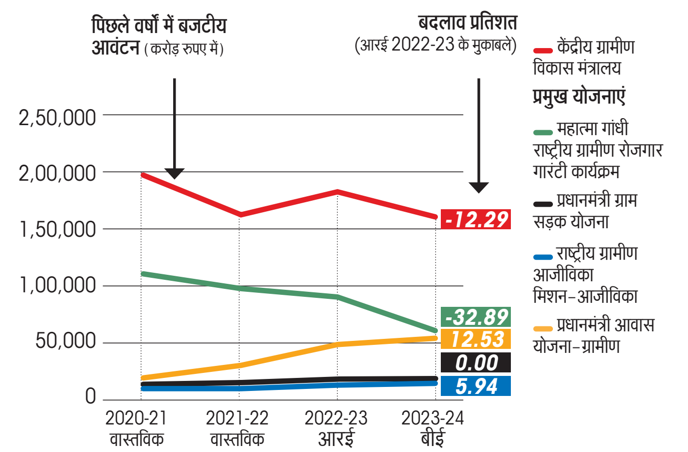

स्रोत : वित्त मंत्रालय

गया था जिसे मौजूदा बजट में 27,564 करोड़ रुपए कर दिया गया है। मसलन आर्थिक रूप से कमजोर तबके को घर खरीदने के लिए लोन के ब्याज पर मिलने वाली सब्सिडी योजना सीएलएसएस-1 (क्रेडिट लिंक सब्सिडी स्कीम) का बजट 11,222 करोड़ (संशोधित अनुमान 2022-23) से घटाकर महज 1 लाख कर दिया गया है।

उपरोक्त योजनाओं के अतिरिक्त सरकार की 14 अन्य सब्सिडी योजनाएं भी हैं, जिनका बजट भी 2,958 करोड़ रुपए (संशोधित अनुमान 2022-23) से घटाकर 812 करोड़ रुपए कर दिया गया है। इन सब्सिडी योजनाओं के बजट में 2,146 करोड़ रुपए की सीधी कटौती हुई है। उदाहरण के लिए ऐसी ही एक योजना "मूल्य समर्थन स्कीम के तहत कॉटन कारपोरेशन द्वारा कपास की खरीद" का बजट 782 करोड़ से घटाकर 1 लाख रुपए कर दिया गया है। इसी तरह माल ढुलाई सब्सिडी स्कीम का बजट 156 करोड़ से 50 करोड़ रुपए हो गया है। "कृषि मंत्रालय में बाजार हस्तक्षेप स्कीम और मूल्य समर्थन योजना" (एमआईएस-पीएसएस) का बजट 1,500 करोड़ रुपए से घटाकर 1 लाख रुपए कर दिया गया है। अगर समग्र रूप से देखें तो तमाम सब्सिडी योजनाओं का बजट 4,03,084 करोड़ रुपए निर्धारित किया गया है जो पिछले वर्ष के बजट अनुमान 5,62,079 से 1,58,995 करोड़ रुपए कम है।

ऐसे समय में जब बेरोजगारी अपने चरम पर है, महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के लिए आवंटन 89,400 करोड़ (2022-23) से घटाकर 60,000 करोड़ कर दिया गया है, जो पिछले दो वर्षों में सबसे कम है। ग्रामीण विकास और आर्थिक रूप से वंचित वर्गों के लिए काम करने वाले नरेगा संघर्ष मोर्चा के एक सामाजिक कार्यकर्ता, निखिल डे कहते हैं, "कम बजट के आवंटन साथ ये साल लाखों गरीब लोगों के लिए जीवन रेखा के रूप में काम करने वाली इस योजना को खत्म करने का पहला साल हो सकता है।" पिछले 5 वर्षों से मनरेगा के वार्षिक बजट का लगभग 21 प्रतिशत पिछले वर्षों के लंबित बकायों को चुकाने पर खर्च किया जाता रहा है। 2022-23 में जनवरी 2023 तक 16,070 करोड़ के बकाए का अनुमान लगाया गया था। डे कहते हैं, "व्यय की प्रवृत्ति को देखते हुए वित्त वर्ष के अंत तक अनुमानित बकाया बढ़कर 25,800 करोड़ हो जाएगा।"

ग्रामीण आबादी को लाभ पहुंचाने वाले क्षेत्रों में केवल 3 के आवंटन में वृद्धि देखी गई है। ये हैं ग्रामीण आवास, जल आपूर्ति और पशुधन। प्रधानमंत्री आवास योजना के लिए आवंटन 2022-23 के 48,000 करोड़ रुपए से बढ़ाकर अब 79,590 करोड़ रुपए कर दिया गया है। हर घर को सीधे पानी की आपूर्ति के उद्देश्य वाले जल जीवन मिशन के लिए फंड आवंटन 60,000 करोड़ से बढ़ाकर 70,000 करोड़ रुपए कर दिया गया है। पशुपालन क्षेत्र को 4,327.85 करोड़ रुपए मिले हैं, जो पिछले बजट से लगभग 40 प्रतिशत अधिक है। आवंटन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा (2,349.71 करोड़) पशुधन स्वास्थ्य और रोग नियंत्रण में सुधार के लिए है। यह बात समझ आती है, क्योंकि भारत पिछले तीन वर्षों से लम्पी स्किन और अफ्रीकी स्वाइन फीवर जैसे दो घातक पशु रोगों का असर झेल रहा है।

वक्तव्यों से परे...

पर्यावरण और विकास पर भारत की प्रतिष्ठित पत्रिका **अब डिजिटल स्वरूप में भी**

पर्यावरण और विकास से जुड़े मुद्दों को समर्पित पत्रिका 'डाउन टू अर्थ' के 25 साल पूरे होने पर हमने इसके हिंदी संस्करण की शुरुआत की थी। यह नई पत्रिका विकास, पर्यावरण और स्वास्थ्य की राजनीति से संबंधित ऐसी जमीनी रिपोर्ट, खबरें और तथ्यपूर्ण लेख आप तक पहुंचा रही है जो आपके लिए सबसे ज्यादा मायने रखते हैं।

'डाउन टू अर्थ' के अंग्रेजी संस्करण की तरह ही हिंदी पत्रिका भी केंद्र और राज्य सरकारों के नीति निर्धारकों को व्यापक जन हित में फैसले लेने के लिए बाध्य कर रही है। पत्रिका में पर्यावरण से जुड़े साहित्य, लोक संस्कृति और इतिहास से संबंधित सामग्री को भी जगह दी जा रही है। हमें आपको यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि आपकी चहेती पत्रिका अब डिजिटल स्वरूप में भी आपके लिए उपलब्ध है।

'डाउन टू अर्थ' हमारे सरोकारों और जुनून का नतीजा है। हमारा लक्ष्य आप तक उन मुद्दों को पूरे तथ्यों के साथ पहुंचाना है, जो हमारे वर्तमान और भविष्य पर असर डालते हैं। इस मुहिम में हमें आपके सहयोग की जरूरत है। आपसे अनुरोध है कि आप 'डाउन टू अर्थ' के हिंदी संस्करण को हर महीने खरीदकर हिंदी में पर्यावरण और विकास को समर्पित स्वतंत्र पत्रकारिता को सहयोग प्रदान करें।

डाउन टू अर्थ

सब्सक्रिप्शन फार्म

सब्सक्राइबर का नाम : श्री/श्रीमती/सुश्री________________________ संस्थान : ________________________

पता : कार्यालय ☐ निवास ☐ ________________________ राज्य : ____________ पिन कोड ☐☐☐☐☐☐

फोन/मोबाइल : ☐ कार्यालय ☐ निवास ____________ फ़ैक्स : ____________ ईमेल : ____________

मैं इस आवेदन के साथ रुपये____________ ☐ नक़द / ☐ मनी ऑर्डर/चेक/डिमांड ड्राफ्ट के माध्यम से भुगतान कर रहा हूं। कृपया मुझे डाउन टू अर्थ के प्रिंट/डिजिटल/ प्रिंट एवं डिजिटल दोनों के लिए सब्सक्रिप्शन प्रदान करें।

चेक/डिमांड ड्राफ़्ट संख्या ☐☐☐☐☐☐☐ तिथि____________ (चेक/डिमांड ड्राफ़्ट **Society for Environmental Communications** के नाम नई दिल्ली में भुगतेय होगा)

	केवल डिजिटल	सर्वश्रेष्ठ उपलब्धता - प्रिंट, डिजिटल और आर्काइव्स (ऑफर सीमित अवधि के लिए)
डाउन टू अर्थ पत्रिका हर महीने	☒	☑
डाउन टू अर्थ डिजिटल हर महीने	☑	☑
डाउन टू अर्थ (हिंदी) निशुल्क डिजिटल आर्काइव	☑	☑
1 वर्ष का सब्सक्रिप्शन (12 अंक)	~~₹600/-~~ ₹180/- **(70% की छूट)**	~~₹600/-~~ ₹360/- **(40% की छूट)**
2 वर्ष का सब्सक्रिप्शन (24 अंक)	~~₹1,200/-~~ ₹330/- **(72% की छूट)**	~~₹1,200/-~~ ₹660/- **(45% की छूट)**
3 वर्ष का सब्सक्रिप्शन (36 अंक) **बेस्ट ऑफर**	~~₹1,800/-~~ ₹450/- **(75% की छूट)**	~~₹1,800/-~~ ₹900/- **(50% की छूट)**
SOE वार्षिक अंक (केवल प्रिंट और केवल डिजिटल सब्सक्राइबर्स के लिए)	अतिरिक्त (वास्तविक मूल्य पर)	अतिरिक्त (वास्तविक मूल्य पर)

पत्रिका मंगाने के लिए कॉल करें 011-40616000 (एक्सटेंशन-234) या ईमेल करें dte@cseindia.org

पूरी तरह से भरे हुए सब्सक्रिप्शन फार्म यहां भेजें: सोसायटी फ़ॉर एन्वायरॉन्मेंटल कम्यूनिकेशंस, 41-तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110062

अधिक जानकारी के लिए लॉग ऑन करें csestore.cse.org.in

फोटो: भागीरथ / सीएसई

महोबा में पान के पुश्तैनी किसान बिजेंद्र चौरसिया के बरेजा में लगे सभी पान जनवरी में चली शीतलहर और पाले की भेंट चढ़ गए। उन्हें लगभग 10 लाख रुपए का नुकसान हुआ

समाप्ति के समीप धरोहर

जीआई टैग के बावजूद महोबा का प्रसिद्ध देशावरी पान विलुप्ति की तरफ बहुत तेजी से बढ़ रहा है। अधिकांश पान किसान जलवायु के उतार-चढ़ाव को इसके लिए जिम्मेदार ठहराते हैं

भागीरथ, महोबा, उत्तर प्रदेश

"मैंने जब से होश संभाला है, ऐसी बर्बादी नहीं देखी।" उत्तर प्रदेश के महोबा में पान की खेती करने वाले 29 वर्षीय बिजेंद्र चौरसिया अपने बरेजा (पान की खेती के लिए बनाए गए अस्थायी ढांचे) में नष्ट हो पान के अवशेषों को दिखाते हुए कहते हैं कि इस साल जनवरी में चली शीतलहर और पाले से लगभग 10 लाख रुपए के पान उनकी आंखों के सामने झड़ गए और बेलें काली पड़कर सड़ गईं।

बिजेंद्र के पूर्वज सैकड़ों वर्षों से पान की खेती करते रहे हैं। उनका मानना है कि वह पान की खेती से जुड़े परिवार की आखिरी पीढ़ी है। संभव है कि आने वाले कुछ वर्षों में वह भी पान की खेती को पूरी तरह त्याग दें। बिजेंद्र की चिंताओं में महोबा में पान की खेती से जुड़े लगभग 100 ऐसे परिवारों की चिंताएं भी शामिल हैं, जिनकी उपज को भीषण ठंड से 70 से 100 प्रतिशत नुकसान पहुंचा है।

बिजेंद्र के बरेजा के पास ही चौरसिया समाज सेवा समिति के उपाध्यक्ष राजकुमार चौरसिया का भी बरेजा है। वह *डाउन टू अर्थ* को नुकसान की जानकारी देते हुए कहते हैं, "जो 10-15 प्रतिशत पान

बचे हैं, वो भी डाल से टूटकर गिर रहे हैं। बाजार में काले पड़े चुके पान का कोई खरीदार नहीं है।”

राजकुमार चौरसिया की बातों की पुष्टि महोबा पान मंडी में फैला सन्नाटा भी करता है। दशकों से पान की खरीद-फरोख्त का केंद्र रही इस मंडी में *डाउन टू अर्थ* जनवरी के आखिरी सप्ताह पहुंचा और पाया कि यहां केवल दो दुकानें थीं। इन दुकानों में बिक रहा अधिकांश पान बंगाल से आया था। सीमित मात्रा में मौजूद महोबा के देशावरी पान की गुणवत्ता इतनी खराब थी कि उसे खरीदने वाला कोई नहीं था।

जोखिम भरी खेती

मंडी में पान विक्रेता 60 साल के खेमचंद चौरसिया अपने समाज का दर्द साझा करते हुए बताते हैं कि चौरसिया समाज आज भीख मांगने की स्थिति में पहुंच गया है। इस साल इतना नुकसान पहुंचा है कि आधे लोगों की दाल-रोटी नहीं चलेगी। त्योहार ऐसे मने हैं, जैसे तेरहवीं हो। खेमचंद के अनुसार, पान की खेती में जोखिम बहुत है, इसी के चलते वह 15 साल पहले ही इसकी खेती छोड़ चुके हैं। वह आगे बताते हैं, “हमारे परिवार के करीब 20 लोग पान की खेती में जुटे रहते थे लेकिन सबने पान की खेती में नुकसान को देखते हुए इसका त्याग कर दिया।” बिजेंद्र की तरह ही खेमचंद भी मानते हैं कि उन्होंने अपने पूरे जीवन में पान की मौजूदा साल जैसी बर्बादी नहीं देखी है।

मंडी में पान बेच रहे 24 वर्षीय प्रदीप चौरसिया ने पान की गौरवशाली अतीत की कहानियां अपने पिता से सुनी हैं। वह बताते हैं, “हमारे पिता बताते हैं कि लगभग 30 साल पहले वह पान की खेती बड़े पैमाने पर करते थे। तब हमारे बरेजा में 200 मजदूर काम करते थे। हमने कभी नहीं सोचा था कि एक दिन हमें खेती छोड़कर पान बेचना पड़ेगा। धीरे-धीरे परिवार के सभी सदस्य पान की खेती से दूर हो गए। पिताजी ने मजदूरी करके हमारा भरण पोषण किया है।”

पान की खेती पर अक्सर ठंड की मार पड़ती है लेकिन उसके बाद भी लगभग 50 प्रतिशत पान बचे रहते थे, लेकिन इस साल का नुकसान बड़ा है। महोबा में राजकीय पौधशाला के प्रभारी सुलेमान खान का अनुमान है कि ठंड से कम से कम 80 प्रतिशत पान को नुकसान पहुंचा है। वह कहते हैं कि मौसम की प्रतिकूल होती परिस्थितियों में समझ नहीं आ रहा है कि पान की खेती आखिर कैसे करें।

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान (एनबीआरआई) में प्रधान वैज्ञानिक रह चुके और महोबा में चुके पान अनुसंधान केंद्र (करीब 20 साल पहले बंद) के संस्थापक रहे रामसेवक चौरसिया का अनुमान है कि शीतलहर और पाले से करीब एक करोड़ रुपए का नुकसान हुआ है।

विलुप्ति की ओर

पिछले 22 वर्षों में पान की खेती का रकबा अप्रत्याशित रूप से कम हुआ है

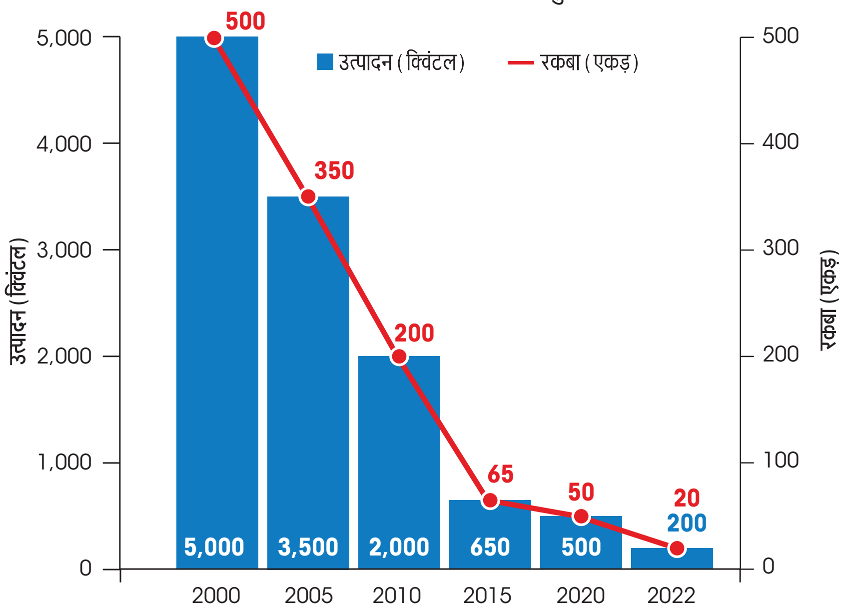

स्रोत : लखनऊ स्थिति राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान (एनबीआरआई) के पूर्व प्रधान वैज्ञानिक व पान अनुसंधान केंद्र महोबा के संस्थापक वैज्ञानिक रामसेवक चौरसिया और चौरसिया समाज सेवा समिति के उपाध्यक्ष राजकुमार चौरसिया द्वारा अनुमानित गणना

घटते किसान

पिछले 22 वर्षों में करीब 75 प्रतिशत किसानों ने पान की खेती से दूरी बना ली है

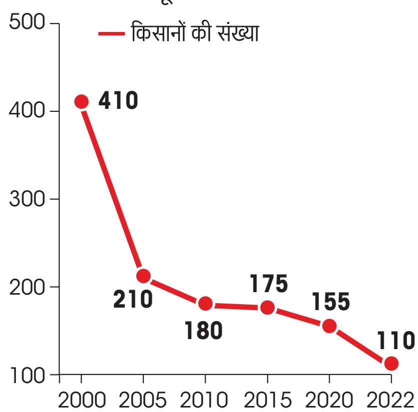

लागत का बोझ

पान की खेती में इस्तेमाल होने वाला सामान चार से पांच गुणा महंगा हो गया है जबकि पान के भाव में दोगुनी बढ़त ही हुई है

सामान	2000	2022
बांस	1,500 रुपए/सैकड़ा	7,000 रुपए/सैकड़ा**
घास	15 रुपए/बंडल	60-65 रुपए/बंडल
तार	50 रुपए/किलो	140 रुपए/किलो
बीज	100 रुपए/ढोली*	500-600 रुपए/ढोली
मजदूरी	50 रुपए/प्रतिदिन	300 रुपए/प्रतिदिन
मिट्टी	200 रुपए/ट्रॉली	800-1,000 रुपए/ट्रॉली

*1 ढोली= 200 पान; ** सैकड़ा: 100 बांस
स्रोत : चौरसिया समाज सेवा समिति के उपाध्यक्ष राजकुमार चौरसिया द्वारा अनुमानित गणना

पान की खेती एक कृत्रिम और संतुलित जलवायु की जरूरत होती है। हर मौसम की चरम स्थितियां इसके लिए नुकसानदेय हैं। राजकुमार चौरसिया ऐसे जोखिमों के बारे में बताते हैं, “पान की खेती को हर मौसम की चरम परिस्थितियों से बचाकर रखना पड़ता है। अधिक वर्षा होने पर, गर्मियों में तापमान 45 डिग्री सेल्सियस पहुंचने पर और सर्दियों में तापमान 6 डिग्री सेल्सियस से नीचे जाने पर फसल को नुकसान पहुंचने लगता है। इस साल तापमान तो दो डिग्री तक पहुंच गया था।” राजकुमार चौरसिया कहते हैं कि 1997 से वह पान की खेती पर जलवायु परिवर्तन के असर को स्पष्ट रूप से देख रहे हैं। तब से अब तक वह मौजूदा साल जैसी लगभग 20 चरम मौसमी घटनाओं की मार को देख चुके हैं। इन घटनाओं ने पान की खेती पर बहुत बुरा असर डाला। रामसेवक चौरसिया मानते हैं कि पाले के बाद लू ने सबसे ज्यादा पान को प्रभावित किया है।

अप्रत्याशित गिरावट

महोबा में पान की खेती लगभग 1,000 वर्ष से जारी है। पान यहां की शान और पहचान दोनों रही है। चंदेल राजाओं के दौर से जारी पान की खेती के लिए पिछले दो से ढाई दशक भारी गुजरे हैं। पान की खेती से जुड़े लोगों का साफ मानना है कि आने वाले कुछ वर्षों में महोबा का पान पूरी तरह विलुप्त हो जाएगा। पान की खेती का घटता रकबा, कम होते किसान और उत्पादन में कमी के आंकड़े विलुप्ति की आशंका को मजबूत करते हैं *(देखें विलुप्ति की ओर, पेज 13)*। साल 2000 से अब तक पान के रकबे में 95 प्रतिशत से ज्यादा की गिरावट आ चुकी है। पान के उत्पादन में लगे 75 प्रतिशत किसान भी इसकी खेती से छिटक गए हैं।

महोबा में उगने वाला देशावरी पान खास इसलिए भी है क्योंकि इसकी खूबियों के कारण 2 साल पहले इसे जीआई टैग (ज्योग्राफिकल इंडीकेशन) मिला है। यह अपने करारेपन और स्वाद के लिए लोकप्रिय रहा है। देशावरी पान को जीआई टैग दिलाने में मुख्य भूमिका निभाने वाले राज कुमार चौरसिया बताते हैं कि विश्व में लगभग 200 पान की प्रजातियों में महोबा का देशावरी पान सबसे विलक्षण गुणों वाला है। यह पान मुंह में डालते ही पूरी तरह घुल जाता है यानी पान का कोई अवशेष मुख में नहीं छूटते। बाकी किसी पान में ऐसा गुण नहीं है। देशावरी पान का स्वाद अलग सुगंध से परिपूर्ण है। ऐसे तमाम गुणों का प्रमाण देने के बाद ही 2021 में इसे जीआई टैग हासिल हुआ। तकलीफ के साथ राजकुमार चौरसिया कहते हैं कि जीआई टैग के बाद भी पान की स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। हाल ही में जब उपमुख्यमंत्री केशव प्रसाद मौर्या महोबा आए तो उन्हें पान की खूबियों से अवगत कराया गया। उन्होंने वादा किया कि पान किसानों की संख्या के अनुसार योजनाएं बनेंगी लेकिन उनकी घोषणा का असर जमीन पर फिलहाल नहीं दिख रहा है।

घाटे का सौदा

मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ ही पान की खेती की बढ़ती लागत भी किसानों को इसकी खेती से दूर रही है। पान के बरेजा में इस्तेमाल होने वाला बांस, बल्ली, तार, घास, सनौवा आदि सामान के दाम आसमान छू रहे हैं। यह सामान साल 2000 के मुकाबले चार से पांच गुणा महंगा मिल रहा है। राजकुमार चौरसिया के अनुसार, सवा बीघा में लगभग 50 पान की पारियां लगती हैं। प्रति पारी 10 हजार रुपए की औसत लागत आती है। वर्तमान में 50 पारियों की लागत करीब 5 लाख रुपए है। 22 साल पहले 50 पारियों की लागत 10 से 15 हजार रुपए थी। उनका कहना है कि चार से पांच गुणा लागत के अनुपात में पान का मूल्य नहीं बढ़ा है। उदाहरण के लिए साल 2000 में एक ढोली पान का मूल्य 100 रुपए था जिसका वर्तमान में औसत मूल्य 200 रुपए प्रति ढोली ही है। लागत और मूल्य के बीच बढ़ता फासला पान की खेती को हतोत्साहित कर रहा है।

"मैं 1997 से पान पर जलवायु परिवर्तन के असर को देख रहा हूं। तब से अब तक कम से 20 बार चरम मौसमी घटनाओं ने पान की खेती को इस साल जैसा भारी नुकसान पहुंचाया है "

राजकुमार चौरसिया, उपाध्यक्ष, चौरसिया समाज सेवा समिति

"पान से मूल्य वर्धित उत्पाद बनाए जाएं तो किसानों को मदद मिलेगी। अगर इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो जीआई टैग वाला महोबा का पान आने वाले चार-पांच साल में खत्म हो सकता है"

रामसेवक चौरसिया, संस्थापक, पान अनुसंधान केंद्र, महोबा

मूल्यवर्धन जरूरी

पान किसान मानते हैं कि इसे गुटखे के चलन ने काफी प्रभावित किया है। किसानों के लिए समर्पित रामसेवक चौरसिया कहते हैं कि हम काफी समय से पान की फसल को प्रधानमंत्री बीमा योजना के दायरे में लाने की मांग कर रहे हैं। दबाव के चलते दस्तावेजों में यह योजना लागू तो कर दी गई, लेकिन वास्तव में किसी भी पान किसान को इसका लाभ नहीं मिला है क्योंकि पान की फसल चार-छह महीने की फसल न होकर सालाना है। यह जनवरी से शुरू होकर दिसंबर तक चलती है। और एक बार लगाया हुआ पान का बरेजा कम से कम दो साल और अधिकतम तीन साल तक चलता है। वह कहते हैं कि जरूरत है कि पान को सालाना फसल की मान्यता प्रदान करते हुए इसे फसल बीमा योजना में शामिल किया जाए। अब तक सरकार ने इस पर ध्यान नहीं दिया है। वह आगे बताते हैं कि काफी कोशिशों के बाद सरकार ने पान का बरेजा लगाने के लिए सरकारी मदद देनी शुरू की है। लेकिन इसमें केवल उन्हीं किसानों को फायदा पहुंचता है जिनके पास खुद की जमीन है। महोबा में 75 प्रतिशत किसान दूसरे की जमीन किराए पर लेकर पान की खेती करते हैं। रामसेवक चौरसिया बताते हैं कि शासन को कई बार लिखित आवेदन देने के बाद भी किराए पर जमीन लेकर खेती करने वाले किसानों को इसका लाभ देने की पहल नहीं हुई है।

रामसेवक चौरसिया पान किसानों को बचाने का रास्ता सुझाते हुए बताते हैं, "पान के किसानों का भला तब ही हो सकता है जब हम पान के वैकल्पिक उपयोग को बढ़ाएं। पान के पत्तों के तेल की बाजार में भारी मांग है। इसका भाव एक लाख रुपए प्रति किलो है। इसका बहुउपयोगी तेल पान कैंडी, पान कंद, पान आइसक्रीम के अलावा कई मिठाइयों में होता है। आयुर्वेदिक दवाओं में भी इसका उपयोग है। यह शरीर को ताकत देने और प्रतिरक्षा को मजबूत बनाने के साथ ही कैंसर अवरोधी भी है। अगर पान का समुचित प्रचार और प्रसार किया जाए और इसके वैल्यू एडेड वस्तुएं बनाई जाएं तो पान किसानों को मदद मिलेगी। अगर ध्यान नहीं दिया गया तो जीआई टैग वाला महोबा का पान चार-पांच साल में खत्म हो सकता है।

Advertisement

Pollution Control Board, Assam

Committed to Sustainable Development through Environmental Protection & Conservation in the State of Assam

47 years of relentless journey in the path of **environmental monitoring, industrial pollution control** and creation of **mass awareness**

- Water Environment monitoring network connecting 206 monitoring points – covering rivers/ lakes/ wetlands/ ponds/ ground water, across the State.
- Air Environment monitoring network connecting 35 manually operated and CAAQM stations covering important cities/towns/localities of Assam.
- Complete online and time-bound Consent Management System to facilitate hassle-free industrialization in the State.
- To enforce the provisions of Plastic Waste Management (Amendment) Rules, 2021 on banned Single Use Plastics through Task Force, State Control Room, extensive awareness building activities, market survey and seizure drives against the banned SUP across the State.
- Constantly working with Civil Society Organisations, NGOs and Institutions in holding seminars, conferences and awareness programs.
- Dissemination of data/information through office web site **www.pcbassam.org**, Facebook, Instagram, twitter, publication of quarterly News Letter – Parivesh Batori, leaflets and Annual Report.

कपड़ों में मिलावट

जिस वक्त हम पॉलिएस्टर को महज एक कपड़ा मान लेते हैं, उसी वक्त हम उसे प्रदूषक के तौर पर देखना बंद कर देते हैं। जबकि, सच यह है कि पॉलिएस्टर प्लास्टिक का ही एक रूप है और पेट्रोकेमिकल्स का दूसरा सबसे बड़ा उप-उत्पाद है। इसके बावजूद दुनिया के कुछ ही देशों ने इस प्लास्टिक फाइबर के प्रबंधन के लिए नियम लागू किए हैं। समय आ गया है कि भारत टेक्सटाइल इंडस्ट्री को विनियमित करने के लिए कानून बनाए और इस इंडस्ट्री को "एक्सटेंडेड प्रोड्यूसर रेस्पॉन्सिबिलिटी" व्यवस्था के दायरे में लाए

पानीपत और दिल्ली से जुम्बिश, मीनाक्षी सोलंकी और सिद्धार्थ घनश्याम सिंह की रिपोर्ट

आप मानें या न मानें, आज हमारे अधिकतर कपड़ों में प्लास्टिक है। सर्दियों कि ठंड से बचाने वाले गर्म, चमकदार, ऊनी जैकेटों से लेकर शरीर में चिपके हुए कसरत के कपड़ों और आरामदायक पजामों तक, सभी परिधान या तो पूरी तरह से पॉलिएस्टर, नायलॉन और ऐक्रेलिक जैसे प्लास्टिक फाइबर से बने होते हैं, या फिर सिंथेटिक सामग्री के साथ कपास और ऊन जैसे प्राकृतिक फाइबर के मिश्रण से।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) का कहना है कि कपड़ा बनाने में इस्तेमाल की जाने वाली 60 प्रतिशत सामग्री प्लास्टिक है। इनमें पॉलिएस्टर, ऐक्रेलिक और नायलॉन शामिल हैं। अमेरिका स्थित गैर-लाभकारी संस्था फाइबरशेड की ओर से जारी नवंबर 2022 की रिपोर्ट के अनुसार, 1980 और 2014 के बीच सबसे अधिक इस्तेमाल किए जाने वाले प्लास्टिक फाइबर यानी पॉलिएस्टर का वैश्विक उत्पादन लगभग 900 प्रतिशत बढ़ गया है।

टेक्सटाइल इंडस्ट्री में पॉलिएस्टर को इतना पसंद किए जाने की एक खास वजह है। सख्त और टिकाऊ होने के बावजूद इसमें फैशन के लिए नई संभावनाएं खोजी जा सकती हैं। पॉलिएस्टर से बने कपड़े अपने आकार को अच्छी तरह बनाए रखते हैं। साथ ही वे हल्के और बिना सिलवट के होते हैं। उनमें न ही सिकुड़न होती है, न ही उनका रंग खराब होता है। हालांकि, इसकी लोकप्रियता का सबसे महत्वपूर्ण कारण शायद यह है कि सिंथेटिक फाइबर से बने वस्त्र प्राकृतिक कपड़ों की तुलना में काफी सस्ते होते हैं।

केंद्रीय कपड़ा मंत्रालय की ओर से जारी नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, अप्रैल 2019 में भारत में पॉलिएस्टर धागे की कीमत 105 रुपए प्रति किलोग्राम थी, जबकि सूती धागे की कीमत 213 रुपए थी। यानी दोगुने से भी अधिक। वैसे तो प्लास्टिक से बने कपड़े ऊपरी तौर पर तो ऐसे लगते हैं, जैसे उनसे कोई नुकसान नहीं हो सकता, लेकिन टेक्सटाइल इंडस्ट्री में इसकी घुसपैठ चिंताजनक है। इन सिंथेटिक

फोटो: विकास चौधरी / सीएसई

फैशन में प्लास्टिक

1930 के दशक में एक शोध प्रयोगशाला में जन्मे पॉलिएस्टर और नायलॉन जैसे प्लास्टिक फैब्रिक्स वर्षों से हमारी अलमारी का एक अभिन्न अंग बने हुए हैं। 2020 में वैश्विक फाइबर उत्पादन में पॉलिएस्टर का हिस्सा लगभग 52 फीसदी था

1940

1930 के दशक में ड्यूपॉन्ट ने पेट्रोलियम आधारित फाइबर विकसित किया। 1940 के दशक में यह महिलाओं की होजरी में रेशम के विकल्प के तौर पर लोकप्रिय हुआ

1960

दशक के लोकप्रिय हिप्पी आंदोलन ने सस्ते पॉलिएस्टर से बनाए जाने वाले रंगीन फैशनेबल कपड़ों को बढ़ावा दिया

1980

आरामदायक कपड़े अक्सर पॉलिएस्टर से तैयार किए जाते हैं, जबकि डांस की पोशाक के लिए लोचदार कपड़े इलास्टेन से बनाए जाते हैं। 1980 के दशक तक एरोबिक्स के कपड़े बनाने के लिए पॉलिएस्टर प्रमुख रूप से उपयोग में लाया जाने लगा

2000

1990 के दशक में अपने पॉलिएस्टर मेकअप और भयानक प्लास्टिक-शेडिंग समस्या के बावजूद गर्म ऊनी जैकेट लोकप्रिय होने लगे। 2000 आते-आते पॉलिएस्टर अधिकतर प्रसिद्ध ब्रैंड्स का पसंदीदा फैब्रिक बन गया, जिससे उन्हें मेक-टेक-डिसकार्ड बिजनेस मॉडल को लोकप्रिय बनाने की छूट मिली

2020

पर्यावरण संबंधी चिंताओं के बढ़ने से ब्रैंड्स सस्टैनेबल फैशन बैंडवैगन की तरफ बढ़े, लेकिन उनके दावे अक्सर गुमराह करने वाले या भ्रामक होते हैं। उनके समाधानों में रिसाइकल प्लास्टिक शामिल होता है, जो आगे जाकर और अधिक प्रदूषण ही पैदा करता है

स्रोत: यूएस स्थित गैर-लाभकारी संस्था फाइबरशेड की ओर से 15 नवंबर 2022 को जारी "द हिडन स्टोरी ऑफ प्लास्टिक्स इन आवर क्लोथ्स"

कपड़ों के उत्पादन, उपयोग, और निस्तारण के दौरान पर्यावरण पर पड़ने वाले असर की अनदेखी नहीं की जा सकती।

प्लास्टिक फाइबर के कार्बन फुटप्रिंट्स ज्यादा होते हैं, क्योंकि वे ज्यादातर जीवाश्म ईंधन से प्राप्त किए जाते हैं। यूएनईपी के अनुसार, 10 फीसदी वैश्विक कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन की वजह अकेले कपड़ा उद्योग है। यह अंतरराष्ट्रीय उड़ानों और शिपिंग को मिलाकर होने वाले कुल उत्सर्जन से अधिक है। अगर हालात यही रहे, तो 2030 तक इस इंडस्ट्री से होने वाला कार्बन उत्सर्जन 50 प्रतिशत से अधिक हो जाएगा। विश्व बैंक के अनुसार, हर साल वैश्विक स्तर पर पैदा होने वाले 300 मिलियन टन प्लास्टिक का पांचवां हिस्सा इसी प्लास्टिक फाइबर का है *(देखें, शुरुआत से समस्या, पेज 19)*।

आज दुनिया में होने वाले कुल फाइबर उत्पादन में सिंथेटिक फाइबर की हिस्सेदारी 69 फीसदी है। इसके उत्पादन में बहुत ज्यादा मात्रा में ऊर्जा की जरूरत होती है। हालांकि, इस्तेमाल में लाए गए उत्पाद सैद्धांतिक तौर पर दोबारा इस्तेमाल तो किए जा सकते हैं, लेकिन ऐसा हो नहीं पाता। आमतौर पर एक बार इस्तेमाल के बाद इसे या तो लैंडफिल में फेंक दिया जाता है या फिर जला दिया जाता है। फैशन ब्रांडों के एक वैश्विक नेटवर्क कॉमन ऑब्जेक्टिव के अनुसार, "ऑयल बेस्ड प्लास्टिक के तौर पर पॉलिएस्टर प्राकृतिक फाइबर की तरह बायोडिग्रेड नहीं होता। बल्कि, यह कई दशकों तक और शायद सैकड़ों वर्षों तक लैंडफिल में पड़ा रहता है।"

मजे की बात यह है कि प्लास्टिक फाइबर अकेले ही "फास्ट फैशन" की प्रवृति को बढ़ावा देने के लिए जिम्मेदार है जिसमें उपभोक्ता बेहद तेजी के साथ कपड़े खरीदते हैं और उतनी ही तेजी के साथ फेंक भी देते हैं। साल 2000 में पूरी दुनिया में 50 अरब नए वस्त्रों का उत्पादन हुआ है। सर्कुलर इकॉनमी को बढ़ावा देने वाले एलेन मैकआर्थर फाउंडेशन (यूके) के अनुसार, अब करीब 20 साल बाद यह आंकड़ा दोगुना हो चुका है। सस्टेनेबल इंडस्ट्रियल प्रैक्टिसेज को बढ़ावा देने वाली वैश्विक संस्था चेंजिंग मार्केट्स फाउंडेशन की अभियान प्रबंधक उर्सका ट्रंक कहती हैं, "लोग 15 साल पहले की तुलना में आज 60 प्रतिशत अधिक कपड़े खरीदते हैं, जबकि तब की तुलना में अब उन्हें आधा वक्त भी इस्तेमाल नहीं करते।"

फिर भी सरकारें सिंथेटिक कपड़ों के प्रसार में सक्रिय रूप से सहायता कर रही हैं। उदाहरण के तौर पर अगले 6 वर्षों में भारत अपने कपड़ा निर्यात को दोगुना करने के लिए पॉलिएस्टर पर बहुत अधिक निर्भर होने वाला है। 27 अक्टूबर 2022 को दिल्ली में हुए एक औद्योगिक कार्यक्रम में केंद्रीय कपड़ा, उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण, और वाणिज्य और उद्योग मंत्री पीयूष गोयल ने बताया कि 2020-21 में भारत में कपड़ा निर्यात का बाजार 40 बिलियन अमेरिकी डॉलर था, जिसके अगले 6 सालों में बढ़कर 100 बिलियन अमेरिकी डॉलर होने की संभावना है। अब तक भारत में टेक्सटाइल इंडस्ट्री खासतौर पर प्राकृतिक फाइबर के आधार पर चलती रही है। अप्रैल-दिसंबर 2021 में निर्यात किए गए कपड़ों में इनका हिस्सा 70 प्रतिशत था। लेकिन, यह कहानी जल्द ही बदलने वाली है। पॉलिएस्टर पर देश की निर्भरता आगे चल कर बड़ी चुनौतियों का कारण बन सकती है, क्योंकि इसके कचरे को संभालने के लिए किसी कानूनी ढांचे या दिशानिर्देशों को अभी तक तैयार नहीं किया गया है।

पॉलिएस्टर पर देश की निर्भरता आगे चल कर बड़ी चुनौतियों का कारण बन सकती है, क्योंकि इसके कचरे को संभालने के लिए किसी कानूनी ढांचे या दिशानिर्देशों को अभी तक तैयार नहीं किया गया है

फायदे का सौदा

पॉलिएस्टर कोई नया कपड़ा नहीं है। 1930 के दशक के उत्तरार्द्ध में खोजे गए इस कपड़े का बाजार 1970 के दशक में विकसित दुनिया में तेजी से बढ़ा *(देखें, फैशन में प्लास्टिक, पेज 17)*। लगभग आधी शताब्दी बीतने के बाद पॉलिएस्टर की समस्या और भी बढ़ती जा रही है जिसका प्रमुख कारण यह है कि वैश्विक चर्चा मुख्य रूप से टेक्सटाइल वेस्ट के प्रबंधन पर केंद्रित है, न कि उसके उत्पादन पर। यह नैरेटिव तैयार कर उपभोक्ता और उनके उपभोग के पैटर्न की बात करते हुए असली दोषियों यानी पेट्रोकेमिकल कंपनियों और ब्रैंड मालिकों को दोषमुक्त कर दिया गया है।

अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी (आईईए) का अनुमान है कि अगले दो दशकों में तेल की मांग सबसे ज्यादा प्लास्टिक की वजह से बढ़ेगी। पैकेजिंग के बाद, कपड़ा पेट्रोकेमिकल प्लास्टिक से बना दूसरा सबसे बड़ा उत्पाद समूह है। 2018 में आईईए की ओर से जारी "द फ्यूचर ऑफ पेट्रोकेमिकल्स" रिपोर्ट के अनुसार, कुल पेट्रोकेमिकल उत्पादों में इसकी हिस्सेदारी 15 प्रतिशत है। विशेषज्ञों का कहना है कि "मेक-टेक-डिस्पोज" बिजनेस मॉडल के लिए हाई-एंड ब्रैंड जिम्मेदार हैं, न कि उपभोक्ता। दुबई स्थित गैर-लाभकारी संस्था की ब्रिटनी सिएरा ने "शुड फास्ट फैशन ब्रांड्स बी अ पार्ट ऑफ द सस्टेनेबिलिटी कन्वर्सेशन?" में लिखा है, "फास्ट फैशन बिजनेस मॉडल सहज तौर पर नए उत्पादों की बढ़ती खपत पर निर्भर है। यह मॉडल बेहद प्रतिस्पर्धी, ज्यादा से ज्यादा आउटपुट निकालने वाला और असमान व्यवस्था बनाने के लिए जिम्मेदार है। इसमें उद्योग जगत भी शामिल है।"

समस्या यहीं खत्म नहीं होती। जैसे-जैसे उपभोक्ता टेक्सटाइल इंडस्ट्री की पर्यावरणीय लागत के बारे में जागरूक हो जाते हैं, वैसे-वैसे ब्रैंड्स के मालिक उत्पादों के पर्यावरणीय फुटप्रिंट्स पर भ्रामक और गलत जानकारी प्रदान करके ग्रीनवॉश करते जाते हैं। सितंबर 2022 में नीदरलैंड्स अथॉरिटी फॉर कंज्यूमर एंड मार्केट्स ने एच एंड एम और डेकाथलॉन को अपने उत्पादों और वेबसाइटों से सस्टेनेबिलिटी लेबल हटाने का निर्देश दिया, क्योंकि वे भ्रामक दावे कर रहे थे। अपनी जांच में डच संस्था ने पाया कि एच एंड एम कंपनी सस्टैनेबिलिटी का अर्थ और ऐसे प्रोडक्ट्स के फायदे बताए बिना ही कॉन्सियस चॉइस जैसे टर्म के साथ सस्टैनेबिलिटी के दावे कर रही थी।

ट्रंक बताती हैं कि ब्रैंड्स आज सस्टैनेबिलिटी का दावा सिर्फ इसलिए कर पाते हैं, क्योंकि पॉलिएस्टर को रिसाइकल किया जा सकता है। लेकिन रिसाइकलिबिलिटी और अंत में रिसाइकल होने के बीच एक बड़ा अंतर है। उनके अनुसार, "ज्यादातर ब्रैंड न तो टेक-बैक स्कीम देते हैं और न ही फाइबर-टू-फाइबर रिसाइक्लिंग तकनीक की गारंटी, लेकिन ये दावा जरूर करते हैं कि उनके सिंथेटिक उत्पाद रिसाइकल करने योग्य हैं।"

छिपी हुई लागत

टेक्सटाइल इंडस्ट्री की पर्यावरणीय लागत हमेशा ज्यादा रही है। प्राकृतिक रूप से रेशे उगाने से बहुत सारे प्राकृतिक संसाधन खत्म हो जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, कपास की खेती में दुनिया भर की कुल कृषि योग्य भूमि के केवल 3 प्रतिशत हिस्से में ही होती है, लेकिन इतने में ही कुल इन्सेक्टिसाइड का 24 प्रतिशत और पेस्टिसाइड का 11 प्रतिशत

शुरुआत से समस्या

फैशन उद्योग कच्चे माल के लिए जीवाश्म ईंधन पर बहुत अधिक निर्भर करता है। वैश्विक कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन में इसकी हिस्सेदारी 10 प्रतिशत है, जो अंतरराष्ट्रीय उड़ानों और शिपिंग से संयुक्त रूप से होने वाले उत्सर्जन से अधिक है

प्री-कंज्यूमर

पोस्ट-कंज्यूमर

कच्चे माल की निकासी

- पेट्रोकेमिकल कंपनियां प्लास्टिक की ही तरह के पॉलिएस्टर के लिए कच्चा माल उपलब्ध कराती हैं, जिसका उपयोग कपड़े बनाने के लिए किया जाता है, क्योंकि यह कपास जैसे प्राकृतिक फाइबर की तुलना में सस्ता और अधिक टिकाऊ होता है।
- फिर भी टेक्सटाइल इंडस्ट्री को सस्टेनेबल बनाने की चर्चा में शायद ही कभी पेट्रोकेमिकल शामिल होता हो

वर्जिन पॉलिएस्टर

रिलायंस इंडस्ट्रीज वर्जिन पॉलिएस्टर का दुनिया का सबसे बड़ा उत्पादक है, जो प्राकृतिक फाइबर की तुलना में अधिक एनर्जी इन्टेन्सिव होता है

रीसाइकल किया हुआ पॉलिएस्टर

इसे फेंक दिए गए वर्जिन पॉलिएस्टर उत्पादों और पीईटी बोतलों से प्राप्त किया जा सकता है

कपड़ा ब्रांड्स, निर्माता

- निर्माता सस्ते पॉलिएस्टर कपड़ों के साथ बाजार भर रहे हैं और खतरनाक तेजी से खपत को बढ़ा रहे हैं
- 15 साल पहले की तुलना में लोग आज 60 प्रतिशत अधिक कपड़े खरीदते हैं, जबकि तब की तुलना में अब उन्हें आधा वक्त भी इस्तेमाल नहीं करते

रिसाइकल, डाउनसाइकल

अधिकतर कपड़े मिश्रित फैब्रिक से बने होते हैं, इसलिए उन्हें अंततः होम फर्निशिंग उत्पादों में डाउनसाइकिल किया जाता है

लैंडफिल, दहन

उचित संग्रह तंत्र की कमी का मतलब है कि पॉलिएस्टर वेस्ट का बड़ा हिस्सा लैंडफिल में चला जाता है या ईंधन के रूप में जला दिया जाता है

स्रोत: सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट (सीएसई) की ओर से संकलित

हिस्सा खप जाता है। यह इंडस्ट्री रंगाई और अन्य प्रक्रियाओं के लिए इस्तेमाल में लाए जाने वाले रसायनों पर भी काफी निर्भर है। पॉलिएस्टर की बढ़ती घुसपैठ ने समस्या में इजाफा ही किया है। हालांकि कपास की तुलना में सिंथेटिक फाइबर का पानी और जमीन पर प्रभाव कम पड़ता है, लेकिन वे प्रति किलोग्राम ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन ज्यादा करते हैं। गैर-लाभकारी संस्था वर्ल्ड रिसोर्सेज इंस्टिट्यूट के 2017 में प्रकाशित एक लेख के अनुसार, "कपड़े के लिए बनाए गए पॉलिएस्टर से 2015 में करीब 706 बिलियन किलोग्राम ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन हुआ। यह कोयले से चलने वाले 185 बिजली संयंत्रों के वार्षिक उत्सर्जन के बराबर है।"

सिंथेटिक कपड़ों को धोने और पहनने के दौरान हर बार प्लास्टिक के छोटे-छोटे टुकड़े भी बिखर जाया करते हैं। ये माइक्रोप्लास्टिक महासागरों, मीठे पानी और भूमि को प्रदूषित करते हैं और इनका उपभोग करने वाले जानवरों के विकास और प्रजनन में रुकावट डाल कर उनके लिए खतरा पैदा करते हैं। हाल के शोध से पता चलता है कि इंसानों के स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा असर पड़ सकता है। 2 मार्च, 2021 को जारी की गई एक रिपोर्ट में नीदरलैंड के वैगनिंगन विश्वविद्यालय के एक पर्यावरण वैज्ञानिक अल्बर्ट कोएलमैन्स ने दावा किया कि लोग हर साल एक क्रेडिट कार्ड के जितना माइक्रोप्लास्टिक्स निगल रहे हैं।

इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर की ओर से 2017 में प्रकाशित "प्राइमरी माइक्रोप्लास्टिक्स इन द ओशेन्स" के अनुसार, समुद्रों में मौजूद माइक्रोप्लास्टिक्स में सिंथेटिक टेक्सटाइल्स की हिस्सेदारी 12 फीसदी है। गैर-लाभकारी संस्था डिफेंड अवर हेल्थ की एक रिपोर्ट के अनुसार, "प्लास्टिक से बने कपड़े और टेक्सटाइल्स इस्तेमाल के साथ टूटते जाते हैं, जिसकी वजह से हमारे घरों में माइक्रोप्लास्टिक और धूल में भरी एंटीमॉनी (पॉलिएस्टर उत्पादन में इस्तेमाल होने वाला एक जहरीला तत्व) बिखर सकते हैं और हमारे सांस लेने, खाने, और आसपास की चीजों को छूने से हमारे शरीर में प्रवेश कर सकते हैं।" जनहित पर्यावरण कानून समूह, एलआईएफई के वरिष्ठ सलाहकार धर्मेश शाह कहते हैं कि, "वर्तमान में कंपनियां पॉलिएस्टर या अन्य प्लास्टिक बनाने के लिए उपयोग किए जाने वाले रसायनों का खुलासा नहीं करती हैं, लेकिन कई रसायन मानव स्वास्थ्य के लिए सही नहीं हैं। जानकारी के अभाव में पॉलिएस्टर को सुरक्षित मानने की गलती नहीं करनी चाहिए।"

टेक्सटाइल वेस्ट के प्रबंधन के तरीके में भी समस्याएं मौजूद हैं। ग्रीनपीस, यूके की एक जांच में पाया गया है कि नाइकी, राल्फ लॉरेन और अन्य ब्रैंड्स के लिए बने कपड़ों से निकले कचरे को कंबोडिया में ईंट भट्टों में जलाया जाता है। इनमें से अधिकतर कपड़ों के पॉलिएस्टर से बने होने की संभावना है, इसलिए इनके जलने से बंधुआ श्रमिकों को जहरीले धुएं और माइक्रोप्लास्टिक फाइबर के संपर्क में आना पड़ता है। इसी तरह बड़े ब्रैंड्स डंपिंग का तरीका भी अपनाते हैं। ये इस्तेमाल में नहीं आए कपड़ों को गलत तरीके से विकासशील देशों में मूल कीमत से कम पर बेच देते हैं। इससे विकासशील देशों में स्थानीय बाजार नष्ट हो जाता है।

मुनाफे में सेंध

पश्चिम के विपरीत भारत में कपड़ों के दोबारा इस्तेमाल और रिसाइकलिंग की अवधारणा सांस्कृतिक रूप से अंतर्निहित है। अधिकतर परिवार या तो अपने पुराने कपड़ों को खुद दोबारा इस्तेमाल करते हैं या उन्हें फिर से इस्तेमाल के लिए दूसरों को दे देते हैं। यहां ऐसे समुदाय भी हैं, जो बर्तन के बदले पुराने कपड़े लेते हैं और फिर पुराने कपड़े बाजार में बेचते हैं।

इस देश में असंगठित कामगारों का एक मजबूत नेटवर्क भी है, जो घरों से फेंके गए कपड़े और अन्य कचरे को इकट्ठा करता है। इससे कुछ हद तक दुनिया के बाकी हिस्सों की तुलना में भारत के लैंडफिल में टेक्सटाइल वेस्ट की कमी के पीछे की वजह भी पता चलती है। यूएन-हैबिटेट में अपशिष्ट प्रबंधन विशेषज्ञ

स्वाति संब्याल बताती हैं कि "हालांकि इसका कोई निश्चित आंकड़ा नहीं है, लेकिन एक मोटे अनुमान के तहत शहरों से निकलने वाले कुल कचरे का 5-6 प्रतिशत हिस्सा कपड़ा होता है।" शाह कहते हैं, "अमेरिका जैसी उच्च खपत वाली अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में भारत का पोस्ट-कंज्यूमर टेक्सटाइल वेस्ट फुटप्रिंट अपेक्षाकृत कम है। हालांकि, हमें लाइफ साइकल के लिहाज से प्लास्टिक की तरह ही कपड़ों के पर्यावरण फुटप्रिन्ट्स और फास्ट फैशन का मूल्यांकन करने की भी जरूरत है। इसमें उत्पादन भी शामिल है।"

भारत की रिलायंस इंडस्ट्रीज दुनिया के सबसे बड़े वर्जिन पॉलिएस्टर उत्पादकों में से एक है। भारत वर्जिन पॉलिएस्टर का एक प्रमुख रिसाइक्लिंग हब भी है। हरियाणा में पानीपत, पंजाब में लुधियाना और समाना, गुजरात में अहमदाबाद, सूरत, राजकोट, और गांधीनगर पॉलिएस्टर रिसाइक्लिंग के प्रमुख केंद्र हैं।

यह इंडस्ट्री कैसे काम करती है, यह समझने के लिए *डाउन टू अर्थ* ने दिल्ली से लगभग 90 किमी दूर स्थित पानीपत के पुराने बाजार का दौरा किया। व्यापारियों का कहना है कि इस इंडस्ट्रियल क्लस्टर में 70 से अधिक बड़ी और छोटी रिसाइक्लिंग इकाइयां मौजूद हैं और उन्हें मुख्य रूप से मोरक्को, दुबई, कनाडा, और यूरोपियन यूनियन से पुराने कपड़े मिलते हैं। पानीपत स्थित केंद्रीय कपड़ा मंत्रालय-प्रमाणित एक रिसाइक्लिंग इकाई, ग्लोबल टेक्सटाइल ओवरसीज के प्रबंध निदेशक पारस अली कहते हैं, "नए कपड़ों के उत्पादन के लिए पॉलिएस्टर के कपड़ों की रिसाइक्लिंग के लिए चर्चित सूरत को छोड़कर, भारत के अन्य सभी हब होम फर्निशिंग उत्पादों खासकर कालीन, बनाने के लिए डाउनसाइकिलिंग का काम करते हैं। लगभग 80 प्रतिशत डाउनसाइकल प्रोडक्ट्स का निर्यात किया जाता है, जबकि 10 प्रतिशत का उपयोग घरेलू मांग को पूरा करने के लिए किया जाता है।"

आयात के बाद कपड़ों को पहले छांटा जाता है, फिर पायदान से लेकर कंबल और चादरों तक कई तरह के उत्पाद बनाने के लिए उनके टुकड़े-टुकड़े कर लुगदी बनाई जाती है। वह आगे कहते हैं, "अंत में जो उत्पाद प्राप्त होता है, वह रिसाइकल किए गए पॉलिएस्टर और वर्जिन पॉलिएस्टर का मिश्रण होता है। उदाहरण के लिए पानीपत में अधिकतर कालीनों में 60 प्रतिशत रीसाइकल किया हुआ पॉलिएस्टर और 40 प्रतिशत वर्जिन पॉलिएस्टर होता है। जैसे-जैसे वर्जिन पॉलिएस्टर की मात्रा बढ़ती है, तैयार उत्पाद की गुणवत्ता बेहतर होती जाती है।"

रिसाइक्लिंग इकाइयों के मालिकों का कहना है कि पानीपत में उत्पादित घरेलू सामानों को फिर से रिसाइकल नहीं किया जा सकता है, इसलिए उन्हें आखिर में लैंडफिल में डाल दिया जाता है या फिर जला दिया जाता है।

बदलाव का वक्त

इंडस्ट्री से जुड़े एक्सपर्ट इस बात पर सहमत हैं कि टेक्सटाइल इंडस्ट्री में लगातार बढ़ती डिमांड नेचुरल फैब्रिक से पूरी नहीं हो सकती है। इसलिए बाजार में पॉलिएस्टर की मौजूदगी बनी रहेगी। हालांकि, वे यह चेतावनी भी देते हैं कि मौजूदा मॉडल सस्टेनेबल नहीं है। भारत में यह बेहद जरूरी हो गया है कि यहां प्लास्टिक की तरह ही पॉलिएस्टर के कचरे को भी गंभीरता से लिया जाए और उसी तरह से उसका निस्तारण किया जाए। यह बात इसलिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि देश में प्लास्टिक वेस्ट से निपटने के लिए तो मजबूत कानून है, लेकिन टेक्सटाइल से निकलने वाले कचरे के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। यह कचरा म्यूनिसिपल सॉलिड वेस्ट रूल्स, 2016 के तहत आता है।

फिलहाल इस कचरे का निस्तारण दो तरह से किया जा रहा हैः पहला, म्यूनिसिपल सॉलिड वेस्ट के तौर पर घर-घर जाकर कचरा उठाया जा रहा है और दूसरा, लैंडफिल और डंपिंग साइट्स से टेक्सटाइल वेस्ट इकट्ठा किया जा रहा है। ऑल इंडिया कबाड़ी मजदूर महासंघ के सेक्रेटरी शशि भूषण कहते हैं, "गरीब लोग फेंके जा चुके कुछ कपड़ों का इस्तेमाल सफाई से जुड़े कामों में करते हैं। कुछ घरों में खराब हो चुके कपड़े को गाड़ियों की रिपेयरिंग करने वाली दुकानों को भी बेच दिया जाता है।"

जानकार कहते हैं कि सबसे पहले फैशन इंडस्ट्री को जवाबदेह बनाने की जरूरत है। शाह कहते हैं, "वे जवाबदेह नहीं हैं, इसलिए अपने प्रोडक्ट्स को सस्टेनेबल बनाने के बारे में भी नहीं सोचते।" नतीजतन अधिकतर कपड़े मिश्रित फैब्रिक से तैयार किए जाते हैं, जिससे उन्हें रिसाइकल करना बेहद कठिन हो जाता है। 100 फीसदी पॉलिएस्टर से बनी शर्ट को कई बार रिसाइकल किया जा सकता है। जबकि, मिश्रित फैब्रिक से तैयार कपड़े को सिर्फ एक बार रिसाइकल कर उसका इस्तेमाल कालीन बनाने में किया जा सकता है। इस इंडस्ट्री में पारदर्शिता की

पानीपत के रिसाइकल करने वाले तैयार उत्पादों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए वर्जिन और रिसाइकल किए हुए पॉलिएस्टर को मिला-जुलाकर इस्तेमाल करते हैं

भी कमी है। शाह कहते हैं, "हमें यह भी नहीं पता है कि प्लास्टिक फाइबर के उत्पादन और उनकी रंगाई में कौन से केमिकल इस्तेमाल किए जाते हैं। पॉलिएस्टर कैसे प्राप्त किया जा रहा है, इसका पता लगाने के लिए भी कोई व्यवस्था नहीं है।"

इस समस्या के समाधान के लिए नियम बनाने जरूरी हैं। ऐसे में पॉलिएस्टर के लिए "एक्सटेंडेड प्रोड्यूसर्स रिस्पॉन्सिबिलिटी (ईपीआर)" जैसे कदम उठाकर ब्रैंड मालिकों की जिम्मेदारी तय की जा सकती है। भारत में प्लास्टिक, टायर, बैटरी और ई-वेस्ट सेक्टर के लिए ईपीआर पहले से ही लागू है। इसके जरिए इनसे जुड़ी इंडस्ट्रीज के लिए कचरे को एकत्रित करने और उसे रिसाइकल करने के लक्ष्य तय किए गए हैं। यूरोपीय देशों में ईपीआर के दायरे में प्रोडक्ट डिजाइनिंग भी शामिल है, जिसके तहत उद्यमियों को ऐसे उत्पाद तैयार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जिन्हें आसानी से रिसाइकल किया जा सके। इससे कम से कम प्रदूषण फैलाने वाले उत्पाद तैयार किए जाते हैं, बल्कि टेक्सटाइल कचरे के लैंडफिल में पहुंचने से पहले उसके कलेक्शन रेट में भी सुधार आता है।

इसका असर इस इंडस्ट्री से जुड़े अनौपचारिक क्षेत्र को भी लाभ पहुंचता है, जो पहले से ही टेक्सटाइल कचरे को इकट्ठा कर उसे अलग करने और ब्रैंड या निर्माता तक कपड़े को वापस पहुंचाने में अहम भूमिका निभा रहा है। दिल्ली और आसपास के इलाकों में टेक्सटाइल वेस्ट आमतौर पर 2-3 रुपए किलो बेचा जाता है। जबकि, इसकी तुलना में दूसरा कचरा काफी महंगा बिकता है। उदाहरण के तौर पर पीईटी बोतलें 20 रुपए किलो, एल्यूमिनियम फॉइल 20-25 रुपए किलो, एल्यूमिनियम कंटेनर 30 रुपए किलो और दूध का पाउच 5 रुपए किलो बिकता है।

फ्रांस ने 2008 में ही टेक्सटाइल और फुटवियर इंडस्ट्री के लिए ईपीआर लागू कर दिया था जिससे वहां कचरे के कलेक्शन रेट में काफी सुधार आया। यूरोपीय देशों के निर्माताओं को सरकार की तरफ से स्थापित संस्था रि-फैशन में रजिस्ट्रेशन कराना और उसे फंड मुहैया कराना जरूरी है। सरकारी संस्था इस फंड का इस्तेमाल कचरे के निस्तारण से जुड़ी व्यवस्था पर करती है। 2020 में इस योजना में 4,096 सदस्यों ने 36 मिलियन डॉलर दिए, जिसमें से 17 मिलियन डॉलर कचरे को अलग करने वाले ऑपरेटर्स को दिए गए, 4 मिलियन डॉलर कम्यूनिटी प्रोजेक्ट्स पर खर्च और और करीब 1 मिलियन डॉलर इनोवेटिव प्रोजेक्ट्स को मिले। 2020 में फ्रेंच मार्केट में 5,17,000 टन उत्पाद पहुंचा, जिसमें से 2,04,000 टन एकत्रित कर लिया गया। इस तरह, 2013 में वेस्ट का जो कलेक्शन रेट 27 फीसदी था, वह 2020 में बढ़कर 39 फीसदी पहुंच गया।

युद्ध को फंडिंग

रिलायंस और चीन की हेंगली सबसे बड़े पॉलिएस्टर निर्माता हैं। ये दोनों कंपनियां युद्ध के बीच रूस से सस्ता तेल खरीदने में जुटी हैं

नाइकी, रैंगलर, लिवाइस जैसे कपड़ों के कम से कम 39 ग्लोबल ब्रैंड रूस से अप्रत्यक्ष तरीके से तेल खरीद रहे हैं। ये कंपनियां तेल की खरीद-फरोख्त दुनिया की 2 सबसे बड़ी पॉलिएस्टर निर्माता कंपनियों के जरिए कर रही हैं। इनमें से एक कंपनी भारत की रिलायंस इंडस्ट्री है और दूसरी चीन की हेंगली ग्रुप। रिलायंस इंडस्ट्रीज और उसकी पॉलिएस्टर बनाने वाली कंपनी के लिए रूस सबसे बड़ा तेल सप्लायर बन गया है। नीदरलैंड की गैर-लाभकारी संस्था "चेंजिंग मार्केट्स" ने अपनी रिपोर्ट में इसका खुलासा किया है। संस्था ने 4 नवंबर 2022 को "ड्रेस्ड टु किल: फैशन ब्रैंड्स हिडेन लिंक्स टु रशियन ऑयल इन ए टाइम ऑफ वॉर" के नाम से अपनी इन्वेस्टिगेटिव रिपोर्ट जारी की थी। चेंजिंग मार्केट्स की पड़ताल में पाया गया कि हेंगली ग्रुप भी पॉलिएस्टर उत्पाद बनाने के लिए रूस से तेल खरीद रहा है।

ये दोनों कंपनियां अपना पॉलिएस्टर धागा और फैब्रिक दुनिया भर के वस्त्र निर्माताओं को बेचती हैं, जो दुनिया के कई सबसे बड़े ब्रैंड्स के लिए कपड़े तैयार करते हैं। हालांकि, फरवरी 2022 में यूक्रेन पर हमले के बाद एडिडास और इस्प्रिट सहित 39 में से 25 से ज्यादा ब्रैंड्स ने रूस में अपना कामकाज रोक दिया था या फिर पूरी तरह से बंद कर दिया था। लेकिन, चेंजिंग मार्केट्स की रिपोर्ट आरोप लगाती है कि सिंथेटिक्स पर निर्भरता के चलते ये ब्रैंड्स अप्रत्यक्ष तौर पर युद्ध को फंडिंग कर रहे हैं।

यूक्रेन पर रूसी हमले के बाद से रिलायंस ने रूस से खरीदे जाने वाले तेल की मात्रा 12 गुना ज्यादा बढ़ा दी है। रिपोर्ट के मुताबिक हमले से पहले रिलायंस हर महीने 72 मिलियन डॉलर का तेल खरीद रहा था, जो जुलाई 2022 में बढ़कर 882 मिलियन डॉलर तक पहुंच गया। इस तरह रूस रिलायंस का सबसे बड़ा तेल सप्लायर बन गया। पड़ताल से पता चलता है कि कंपनियां रियायती कीमत पर मिल रहे रूसी तेल का फायदा उठा रही हैं और रूस को फंडिंग रोकने की पश्चिमी देशों की कोशिशों पर पानी फेर रही हैं। हेंगली ग्रुप की सस्ते क्रूड ऑयल की खरीद के साथ ही मई 2022 तक चीन का रूसी तेल का आयात एक साल पहले की तुलना में 55 गुना तक बढ़ गया था।

यहां तक कि यूरोपीय संघ ने भी अपने "वेस्ट फ्रेमवर्क डायरेक्टिव (डब्ल्यूएफडी)" के सदस्यों से कहा है कि इस्तेमाल हो चुके टेक्सटाइल और कपड़ों के लिए 1 जनवरी 2025 तक अलग-अलग कलेक्शन सेंटर स्थापित कर लें। ताकि, यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह कचरा न तो लैंडफिल में भेजा जा सके और न ही जलाया जा सके। इस योजना को हकीकत में तब्दील करने के लिए ईपीआर एक आर्थिक साधन का काम करेगा।

भारतीय शहरों में एक और चिंताजनक ट्रेंड दिखाई दे रहा है। यहां इंडस्ट्रीज में मशीनों के जरिए कचरे की छंटाई और निस्तारण का काम बढ़ रहा है। इस प्रक्रिया के चलते कचरे के निस्तारण में अनौपचारिक क्षेत्र की भूमिका घट रही है। दिल्ली स्थित गैर-लाभकारी संस्था सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट के शोधकर्ताओं ने हाल ही में इंदौर का दौरा किया। केंद्र सरकार के स्वच्छ सर्वेक्षण अभियान के मुताबिक इंदौर भारत का सबसे साफ शहर है। यहां शोधकर्ताओं ने पाया कि शहर का सारा टेक्सटाइल कचरा सीमेंट इंडस्ट्री में पहुंचाया जा रहा है, जहां उसे जला दिया जाता है। अंतरराष्ट्रीय गैर-लाभकारी संस्था ग्लोबल एलायंस फॉर इंसीनरेटर अल्टरनेटिव्स की एसोसिएट डायरेक्टर मोनिका विल्सन कहती हैं, "कचरे को जलाने का मतलब उसे लैंडफिल से उठाकर आसमान में पहुंचा देने जैसा है।"

दिल्ली की गैर-लाभकारी संस्था सेंटर फॉर रेस्पॉन्सिबल बिजनेस ने अप्रैल 2022 में "सर्कुलर टेक्सटाइल एंड अपैरल इन इंडिया: पॉलिसी इंटरवेंशन प्रियॉरिटीज एंड आइडियाज" जारी किया था। इसमें सुझाव दिया गया है कि टेक्सटाइल इंडस्ट्री को खुद को सर्कुलर इकोनॉमी में बदलने की जरूरत है। इसके लिए सरकार को उत्पादन और कचरा प्रबंधन के लिए स्पष्ट गाइडलाइंस तैयार करनी चाहिए। गाइडलाइंस में इसके लिए भी निर्देश होने चाहिए कि निर्माता अपने उत्पाद की कीमत में वेस्ट कलेक्शन की लागत भी शामिल करें। इसके साथ ही सरकार को इंडस्ट्री के लिए रिसोर्स ऑडिट भी अनिवार्य कर देना चाहिए।

अंततः भांग और केले से मिलने वाले फाइबर जैसे वैकल्पिक मैटेरियल पर काम करने की जरूरत है, जिसमें ऊर्जा और पानी की जरूरत कम होती है। इन्हें आसानी से रिसाइकल भी किया जा सकता है और ये ज्यादा समय तक चलते भी हैं। बाजार में ऐसे विकल्प मौजूद तो हैं, लेकिन उनके विकास और शोध पर पर्याप्त काम नहीं हो सका है, इसलिए उनकी पहुंच सीमित है।

फोटो सौजन्य: लूम्स ऑफ लद्दाख

परिवार से अधिकार तक

ग्रामीण अंचल में स्वयं सहायता समूह की महिलाओं ने न सिर्फ घर-समाज की बांधी हुई दहलीज को लांघा है बल्कि अब वह अधिकारों की वकालत करते हुए अपने सामर्थ्य से शासन में अपना हक-हकूक मांगने लगी हैं। *डाउन टू अर्थ* ने करीब 11 राज्यों के ऐसे स्वयं सहायता समूहों की पड़ताल की, जो आजीविका से ऊपर उठकर सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों की वकालत कर रही हैं...

अब नेतृत्व की बारी

राजनीति में महिलाओं का तय होता स्थान नई प्रगति की पहचान बन रहा

स्वास्ति पचौरी

इन दिनों "नारी शक्ति" का विषय वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था और विभिन्न राजनीतिक दलों के लिए एक प्रमुख विषय है। इसे दलों के चुनावी घोषणापत्रों में लगातार देखा जा सकता है। बजट 2020 को रेखांकित करने वाले नारे "नारी तू नारायणी" से लेकर इस साल गणतंत्र दिवस समारोह तक- "नारी शक्ति" या "महिला सशक्तिकरण" की थीम ने गति पकड़ी है। 2019 के बाद से मतदान में महिलाओं की भागीदारी लगातार बढ़ रही है। 2019 के आम चुनावों में महिलाओं और पुरुषों ने लगभग बराबर संख्या में मतदान किया। यदि नए आंकड़ों को देखें तो 2019 के बाद से महिला मतदाताओं ने पुरुष मतदाताओं के मुकाबले में 3.6 फीसदी की तुलना में 5.1 फीसदी की छलांग लगाई है। महिलाएं राजनीतिक दलों के लिए सबसे महत्वपूर्ण निर्वाचन क्षेत्र के रूप में उभरी हैं।

यही कारण है कि राजनीतिक दल अपने चुनावी घोषणाओं में महिला मतदाताओं और उनके हितों को शामिल करने और उन पर फोकस करने की रणनीति लगातार बना रहे हैं। मनरेगा, स्वच्छ भारत अभियान के "इज्जत घर", उज्ज्वला के गैस कनेक्शन, जल जीवन मिशन के तत्वावधान में नल-जल आपूर्ति, गरीबी को कम करने और महिलाओं के संघर्ष को कम करने के उद्देश्य से मजदूरी में लैंगिक समानता, महिलाओं को मुफ्त बस और मेट्रो की सवारी और अंत में महिलाओं के नेतृत्व वाले स्वयं सहायता समूहों को आर्थिक विकास के सबसे महत्वपूर्ण कारक के रूप में मान्यता देना शासन प्रणाली के प्रमुख एजेंडे पर आ गया है। वहीं, वैश्विक स्तर पर महिलाओं के भूमि अधिकारों, महिला उत्पादक समूहों और अन्य पहलों पर सतत विकास लक्ष्य-5 (एसडीजी 5) यानी कि लैंगिक समानता के लक्ष्य लगातार महत्वपूर्ण होते जा रहे हैं। लेकिन इन सब के बीच ग्रामीण महिलाएं और महिला स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) को भी अब राजनीति और नेताओं की तरफ से महत्व मिलने लगा है। भारत में लगभग 1.2 करोड़ एसएचजी हैं, जिनमें 88 प्रतिशत महिला स्वयं सहायता समूह (आर्थिक सर्वेक्षण, 2022-23) हैं जो विभिन्न घरेलू व्यवसायों और छोटे उद्यमों में लगे हुए हैं। इस वजह से सरकार लगातार महिला स्वयं सहायता समूहों को तरजीह दे रही है।

मध्य प्रदेश के श्योपुर जहां अगले साल चुनाव होने हैं, वहां के कराहल क्षेत्र में पिछले साल जनसभा में मानव शक्ति का महत्व बताते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि स्वयं सहायता समूह राष्ट्र-सहायता समूहों में बदल जाएंगे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए 2023 का बजट एसएचजी के नेतृत्व वाली विकास क्रांति को आगे बढ़ाने के महत्व को पहचानता है। यह बजट इन समूहों को आगे बढ़ाने उन्हें बड़े उत्पादक समूह बनाकर, आर्थिक सशक्तिकरण के अगले चरण में ले जाने की योजना पर केंद्रित है। महिलाओं और लड़कियों को आर्थिक रूप से आगे बढ़ाने के लिए, बजट 2023 ने "महिला सम्मान बचत पत्र" नामक एक नई योजना भी शुरू की है। लड़कियों और महिलाओं के लिए एकमुश्त बचत योजना, उन्हें कम से कम 2 लाख रुपये तक बचाने का अवसर प्रदान करती है। इस पर 7.5 फीसदी का निश्चित ब्याज दर मिलेगा। महिला स्वयं सहायता समूह की ताकत तब सबसे ज्यादा सामने आई जब हमारे सामने कोविड-19 का सबसे बड़ा संकट सामने आया। कोविड-19 महामारी नियंत्रण के लिए लगाए गए लॉकडाउन में भारत के स्वयं सहायता समूहों ने कई मिसालें पेश कीं। मसलन, कोविड-19 सुरक्षात्मक उपकरण, मास्क और सैनिटाइजर बनाना, समुदायों और लोगों को टीकाकरण के

महत्व के बारे में शिक्षित करना, सामाजिक दूरी के बारे में जागरूकता फैलाना और सामुदायिक रसोई का नेतृत्व करने में ग्रामीण महिलाएं सबसे आगे रहीं। ग्रामीण महिलाओं के समूहों की इस शक्ति को पहचानते हुए राष्ट्रीय स्तर पर गरीब परिवारों को एसएचजी से जोड़ने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय के तहत दीनदयाल अंत्योदय योजना-राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (डीएवाई-एनआरएलएम) चलाया जा रहा है। यह मिशन अनिवार्य करता है कि प्रत्येक गरीब ग्रामीण परिवार से कम से कम एक महिला स्वयं सहायता समूह से जुड़े।

एसएचजी महिलाओं के उत्थान का एक अहम जरिया बनकर उभरा है। मिसाल के तौर पर एसएचजी न सिर्फ महिलाओं को वित्तीय मजबूती दे रहे हैं बल्कि उन्हें स्वामित्व अधिकार की तरफ भी बढ़ा रहे हैं। खाद्य और कृषि संगठन का एक अध्ययन यह बताता है कि भूमि और स्वामित्व अधिकारों के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने से विकासशील देशों में कृषि उत्पादन 2.5 से 4 प्रतिशत तक बढ़ सकता है। यह दुनिया भर में भूख को 12-17 प्रतिशत तक कम कर सकता है। इसी तरह प्रदीप पांडा और बीना अग्रवाल के एक अलग अध्ययन में भारत के केरल राज्य में यह पाया गया कि स्वामित्व अधिकार वाली महिलाओं पर शारीरिक घरेलू हिंसा में कमी आई है। पारंपरिक एसएचजी से हटकर आजीविका विविधीकरण भी महिलाओं को नए आयाम दे रहा है।

आजीविका विविधीकरण के जरिए न सिर्फ महिलाएं आर्थिक सशक्त बन रही हैं बल्कि वह पुरुष प्रधान क्षेत्रों में भी तेजी से कदम रख रही हैं। रानी मिस्त्री, बैंक सखी, पशु सखी और पोषण सखी के रूप में एसएचजी महिलाओं ने यह साबित करके दिखाया है। विभिन्न सखियों के रूप में महिलाएं राष्ट्रीय विकास के एजेंडे को लागू करने में मदद करने के लिए जमीनी स्तर पर सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में काम कर रही हैं और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की महत्वपूर्ण घटक बन चुकी हैं। यही वजह है कि महिला एसडीजी को और ज्यादा गतिशील बनाने के लिए सरकारें उन्हें लक्ष्य कर रही हैं। 2021 में, ग्रामीण विकास मंत्रालय ने "लखपति एसएचजी" की अवधारणा की परिकल्पना की, जिसका लक्ष्य ग्रामीण महिलाओं को प्रति वर्ष कम से कम एक लाख रुपये कमाने का लक्ष्य देना था। इसी तरह ओडिशा में "मिशन शक्ति" ने राज्य में महिलाओं के नेतृत्व वाले स्वयं सहायता समूहों के विशाल नेटवर्क को प्रमुखता दी है। आजीविका विविधीकरण उनकी सामाजिक और ऊर्ध्वगामी गतिशीलता को प्रोत्साहित करता है। यह समय है कि एसएचजी सदस्यों द्वारा उत्पन्न नेतृत्व कौशल और सामाजिक पूंजी का उनकी एजेंसी और भागीदारी दोनों को राजनीतिक रूप से सशक्त बनाकर प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाए। उदाहरण के लिए पंचायती राज संस्थानों (पीआरआई) में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण, कुछ राज्यों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण, एक सही दिशा में उठाया गया कदम है। हालांकि इस आरक्षण में सरपंच पति या प्रॉक्सी सरपंच एक बड़ी समस्या है। स्वयं सहायता समूह अब सरकारी योजनाओं के लाभार्थी नहीं रह गए हैं। वे अब अधिकारों की वकालत करने वाले संस्थान बन रहे हैं और राजनीतिक दलों ने इसे समझ लिया है। कई एसएचजी ने अपने अधिकारों की वकालत करना शुरू कर दिया है (उदाहरण के लिए : केरल में कुदुम्बश्री) और वे दबाव समूहों के माध्यम से अपनी आजीविका को बनाए रखते हुए एक्टिविज्म कर रहे हैं। उनके मजबूत सामाजिक नेटवर्क उन्हें गुण और प्रदर्शन प्रभावों के कारण राजनीतिक दलों के लिए आवश्यक बनाते हैं जो महिला वोट बैंक को और मजबूत करने में मदद करते हैं। हालांकि, अब भी उनके राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिए भी बहुत कुछ किए जाने की आवश्यकता है। राजनीतिक पार्टियों ने महिला एसएचजी सदस्यों की विशाल मानवीय, सामाजिक और आर्थिक क्षमता को महसूस किया है। अब यह वक्त है कि सक्रिय राजनीति में उनकी भागीदारी बढ़ाने के लिए प्रयास किए जाएं। महिला उम्मीदवारों को नामांकन दाखिल करने के लिए प्रोत्साहित करना एक स्वागत योग्य कदम है। इसके अलावा बीजू जनता दल ने धामनगर विधानसभा उपचुनाव के लिए 2022 में एक महिला एसएचजी सदस्य को नामांकित किया था, पिछले उत्तर प्रदेश चुनाव में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आईएनसी) द्वारा चुनाव में महिलाओं की भागीदारी के लिए 40 प्रतिशत टिकट आरक्षण किया जाना और 17वीं लोकसभा में अब तक की उच्च 78 महिलाओं की संख्या एक सकारात्मक संदेश है। यह महिलाओं के समग्र सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए मार्ग प्रशस्त करती है।

पशमीना बनाता लूम्स ऑफ लद्दाख

स्वयं सहायता ग्रुप ने चांगपा आदिवासियों को उनका असली हक दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई

भागीरथ

फोटो सौजन्यः लूम्स ऑफ लद्दाख

साल 2015 में लेह के उपायुक्त (डीसी) प्रसन्ना रामास्वामी लद्दाख के सुदूरवर्ती गांव चूमुर के दौरे पर थे। गांव की महिलाओं ने उन्हें हाथ से बुने ऊनी उत्पाद दिखाए तो वह हतप्रभ रह गए। उनके हाथों की कारीगरी के प्रेरित होकर उन्होंने महिलाओं के कौशल विकास के लिए लक्सल परियोजना शुरू की, जिसका मकसद था इन महिलाओं के हुनर को एक मंच प्रदान करना और उसे निखारना।

समुद्र तल से 4,900 मीटर की औसत ऊंचाई पर स्थित पूर्वी लद्दाख का चांगथांग क्षेत्र चांगपा आदिवासियों का घर है जो परंपरागत रूप से चरवाही का काम करते हैं। चूमुर भी इसी क्षेत्र का गांव है। घोड़े, याक, भेड़ों के अलावा चांगपा के पास पाई जाने वाली बकरियां पशमीना का प्रमुख स्रोत हैं। यह क्षेत्र साल में 35,000 से 50,000 किलो पशमीना का उत्पादन करता है। यह अब तक कच्चे पशमीना का आपूर्तिकर्ता ही रहा है और चांगपा उस लाभ से वंचित रहे हैं, जिसके वे हकदार थे। प्रसन्ना ने इसी चांगथांग घाटी के आठ गांवों की महिलाओं को ट्रेनिंग के लिए राजी कर लिया। इनमें से 62 प्रतिशत महिलाएं पशुपालक थीं और शेष उनसे कच्चे माल निकालने वाली उत्पादक समूह का हिस्सा थीं। अब तक ये महिलाएं शौकिया ही बुनाई करती थीं और वे इनके व्यावसायिक महत्व से अनजान थीं। लक्सल परियोजना के तहत इन महिलाओं को तीन महीने तक पशमीना बुनाई की ट्रेनिंग दी गई जिसके बाद वे कच्चे ऊन से बेशकीमती पशमीना उत्पाद बुनने के हुनर में पारंगत हो गईं।

प्रसन्ना को इस काम में उनकी पत्नी अभिलाषा बहुगुणा का भरपूर साथ मिला और दोनों ने मई 2017 में लद्दाखी महिलाओं के उत्पाद को पहचान दिलाने और उन्हें आय का साधन मुहैया कराने के लिए स्वयं सहायता समूह लूम्स ऑफ लद्दाख का गठन किया। समूह में मुख्य रूप से वही महिलाएं शामिल थीं जो लक्सल परियोजना से जुड़ीं थीं। लूम्स ऑफ लद्दाख में स्वामित्व की भावना ने इन महिलाओं को समूह में जुड़ने को प्रेरित किया।

अभिलाषा बहुगुणा *डाउन टू अर्थ* को बताती हैं, “यह एक साझा सपना है। पशमीना लद्दाख के लिए पहचान का मुद्दा रहा है। यहां के लोगों को यह दुख सालता था कि उनका पशमीना दुनिया में सर्वोत्तम है, फिर हम कच्चे माल की आपूर्ति तक ही क्यों सीमित हैं। वैश्विक बाजार में उसकी हिस्सेदारी महज एक प्रतिशत क्यों है?” अभिलाषा ने 2013 में छात्र जीवन के दौरान कश्मीरी शिल्पकारों को अपने उत्पाद बेचने के लिए संघर्ष करते हुए देखा था। तब उनके अंदर यह भावना पैदा हुई थी, जब अमूल मॉडल सफल हो सकता है तो लग्जरी पशमीना क्यों नहीं? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर खोजने के क्रम में लूम्स ऑफ लद्दाख का विचार उनके दिमाग में आया और पति की मदद से उसे धरातल पर उतारा गया। वर्तमान में 400 महिलाएं समूह का हिस्सा हैं। 2021 में इनकी संख्या 200 थी। समूह से जुड़ी इन महिलाओं की मासिक आमदनी भी 2021 में 1,500 रुपए से बढ़कर 2022 में 2,500-15,000 रुपए तक पहुंच गई है। इसी तरह पशमीना का मासिक उपभोग भी इस अवधि में सात गुणा बढ़ गया है। लूम्स ऑफ लद्दाख द्वारा 2021 में पशमीना की मासिक खपत 7 किलो थी जो 2022 में 52 किलो तक पहुंच गई है। कहने का अर्थ है कि 52 किलो पशमीना का विभिन्न उत्पादों में मूल्यवर्धन हो रहा है। पशमीना के अलावा अन्य स्थानीय ऊन की खपत भी तीन गुणा बढ़कर 10 किलो से 30 किलो के स्तर पर पहुंच गई है। समूह प्रबंधन से जुड़े निशांत राज *डाउन टू अर्थ* को बताते हैं कि लूम्स ऑफ लद्दाख का

मासिक टर्नओवर करीब 4 से 5 लाख रुपए है। अधिकांश आय प्रदर्शनियों और मेलों में उत्पादों को बेचने से अर्जित होती है। निशांत के अनुसार, लद्दाख के विभिन्न गांवों में समूह के केंद्र हैं, जहां महिलाएं एकत्र होकर उत्पाद तैयार करती हैं। बहुत सी महिलाएं यह काम घर से भी करती हैं। लूम्स ऑफ लद्दाख पश्मीना या अन्य ऊनी उत्पाद बेचने से प्राप्त आय तक वितरण बहुत ही पारदर्शी तरीके से करता है। उत्पादों से प्राप्त आय का करीब एक तिहाई हिस्सा समूह की महिलाओं को वितरित होता है और 40 प्रतिशत आय का उपयोग कच्चा माल खरीदने और शेष समूह के संचालन पर खर्च होता है।

अभिलाषा बताती हैं कि समूह अपने उत्पादों को घरेलू बाजार में मुख्य रूप से लेह में खुले स्टोर, देशभर में हो रही प्रदर्शनियों और ताज ग्रुफ ऑफ होटेल्स के जरिए बेचता है। इसके अलावा समूह ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से भी उत्पादों की बिक्री करने लगा है। हालांकि वह अभी शुरुआती चरण में है। इसके अलावा समूह विदेशों में स्थित कुछ स्टोरों में भी अपने उत्पाद बेचता है। अभिलाषा के अनुसार, लूम्स ऑफ लद्दाख फॉर्म टू फैशन पर आधारित पहल है। यह ग्रामीण महिलाओं का एक आंदोलन है जो लद्दाख की टेक्सटाइल कॉटेज इंडस्ट्री को स्थापित करने के प्रयासों में जुटा है। समूह के प्रबंधन में बुनकर महिलाओं की अहम हिस्सेदारी है। वह आगे बताती हैं कि समूह ने भारतीय सेना से हाल में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं। इस समझौते के तहत सेना से संबद्ध महिलाओं को ट्रेनिंग देकर उन्हें समूह में शामिल किया जाएगा।

लद्दाख में लूम्स ऑफ लद्दाख स्वयं सहायता समूह के अंतर्गत 400 महिलाएं काम करती हैं और 52 किलो प्रति माह पश्मीना की खपत पहुंच गई है

मैं पंच बन गई...

भेदभाव को भोगने वाली महिलाओं ने शराबबंदी से लेकर राजनीति तक का सफर किया तय

विवेक मिश्रा

"मैं कुष्ठ पीड़ित थी। घर से बाहर नहीं निकलती थी। गांव में ज्यादातर लोग भेदभाव करते थे। कुष्ठ रोग के कारण लोग इसे छुआछूत की बीमारी मानते थे और दूर रहकर बात करने के लिए कहते थे। बहुत छुआछूत था लेकिन अब गांव बदल चुका है। गांव में अब मेरे जैसी और कुष्ठ रोगियों के लिए कोई भेदभाव और दुर्व्यवहार नहीं रहा। द लैप्रोसी मिशन ट्रस्ट इंडिया के सहयोग से बने स्वयं सहायता समूह ने लोगों को जागरुक और हमें जिम्मेदार बना दिया है। हम लगातार लैप्रोसी के मुफ्त सरकारी इलाज और सामाजिक भेदभाव को खत्म करने की जागरुकता फैला रहे हैं।" यह बात पूरे आत्मविश्वास के साथ छत्तीसगढ़ के जाजंगीर चांपा जिले में आमोदा गांव की छाया नामदेव *डाउन टू अर्थ* से कहती हैं। वह गांव में सबसे पुराने और पहले स्वयं सहायता समूह "सहारा" की वर्ष 2012 से सदस्य हैं।

आमोदा गांव में छाया नामदेव अकेली नहीं हैं जिनके जीवन में बदलाव आया है। लगभग 5,000 की आबादी वाले इस गांव में अब 20 ऐसे स्वयं सहायता समूह बन चुके हैं जो आजीविका के लिए स्कूलों में सिर्फ मध्यान्ह भोजन बनाने तक सीमित नहीं हैं बल्कि अपने सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों के लिए सजग और सतर्क हैं। सहारा समूह से जुड़ी महिलाएं खेती-किसानी, उत्पाद तैयार करना और व्यक्तिगत स्तर पर व्यवसाय करके विविध तरीकों से आजीविका चला रही हैं।

सहारा एसएचजी की ही सदस्य सरस्वती श्रीवास कभी घर की दहलीज पार करने में संकोच करती थीं। लेकिन 2012 में उन्होंने समूह की महिलाओं के साथ शराबबंदी को लेकर आंदोलन किया। वह *डाउन टू अर्थ* से बताती हैं, "हमारे गांव में शराब की भट्ठी थी, जिसके चलते ज्यादातर पुरुष गांव में ही शराब पीकर लड़ाई-झगड़े में लिप्त रहते थे। मैने और गांव के सभी स्वयं सहायता समूह ने इस भट्ठी को बंद करने के लिए गांव के मुखिया से लेकर राज्य के मंत्री तक फरियाद की और आखिरकार हमारी जीत हुई। गांव के पांच किलोमीटर दायरे में शराब भट्ठी न होने की अपील मान ली गई। इसने हमारे महिला स्वयं सहायता समूहों के भीतर आत्मविश्वास भरा। फिर मैंने 2015 में वार्ड में पंच का चुनाव लड़ा और जीत भी गई।"

सरस्वती श्रीवास पंच का अपना कार्यकाल पूरा कर चुकी हैं और इस वक्त उनके वार्ड में पुरुष पंच है। वह कहती हैं कि आगे जब महिला सीट रिजर्व होगी तो फिर से पंच का चुनाव

फोटोः मनोज नाग

छत्तीसगढ़ के जांजगीर चाम्पा जिले में स्थित आमोदा गांव में एसएचजी द्वारा कुष्ठरोग के उन्मूलन के लिए जागरुकता रैली निकाली गई

लड़ेंगी। गांव में एक सरपंच के साथ 20 पंच होते हैं। सरस्वती व्यक्तिगत तौर पर सिलाई का काम करती हैं। वहीं, समूह के साथ मशरूम उत्पादन का काम भी कर रही हैं। उन्हें महीने की 5-6 हजार रुपए की आमदनी हो जाती है।

सरस्वती बताती हैं कि जब समूह की महिलाओं के सहयोग से वह पंच बनी तो उन्हें पंचायत के नियम और कायदों का पता चला। इसका खूब फायदा उन्होंने अपने समूह की महिलाओं को दिया। वह कहती हैं कि राशन कार्ड और आवास जैसी योजनाओं को हासिल करने में वह समूह के महिलाओं की खूब मदद करती थीं।

छत्तीसगढ़ में द लैप्रोसी मिशन ट्रस्ट इंडिया के राज्य समन्वयक किस्मत नंदा बताते हैं कि छत्तीसगढ़ के जांजगीर चांपा जिले से 20 किलोमीट दूर बसे आमोदा गांव से कुष्ठ रोगियों की काफी संख्या थी। 2006 में इस आधार पर गांव में मिशन पहुंचा। वहां लैप्रोसी को लेकर काफी सामाजिक भेदभाव था। पुरुषों का वर्चस्व था वह महिलाओं को किसी बैठक में भागीदारी नहीं करने देते थे। हमने इस बैरियर को तोड़ा और महिलाओं को एकत्र किया। सहारा स्वयं सहायता समूह इसी का परिणाम था जिसमें अब 20 महिलाएं जुड़ी हैं और अधिकारों के प्रति न सिर्फ जागरूक हैं बल्कि व्यक्तिगत सामर्थ्य पर कमाई कर रही हैं। आमोदा गांव में सहारा समूह से जुड़ी हमीदा बेगम जो कि कुष्ठ रोगी थीं, अब वह ठीक हो चुकी हैं। वह समूह के साथ गांव में कुष्ठ रोग के मुफ्त सरकारी इलाज के लिए जागरुकता फैलाती हैं। वह चूड़ी की दुकान भी चलाती हैं। आमोदा ब्लॉक में लैप्रोसी मिशन के समन्वयक जनक नाग बताते हैं कि कोरोना संकट के समय मिशन की ओर से इन्हें 10 हजार रुपए की सहायता राशि दी गई थी। तबसे यह दुकान को और बेहतर तरीके से चला रही हैं। हमीदा बेगम अपने चूड़ी की दुकान से प्रति महीन 5 से छह हजार रुपए की कमाई कर लेती हैं। आमोदा गांव में इस वक्त सहारा स्वयं सहायता समूह मशरूम उत्पादन से आमदनी कर रहा है। समूह के सदस्य बताते हैं कि मशरूम का काम 2021 से शुरू किया गया। इस साल भी मशरूम उत्पादन की तैयारियां चल रही हैं। स्वयं सहायता समूह ने बताया कि 2021 में कुल 4,500 लागत के साथ 19,000 रुपए मशरूम उत्पादन में अर्जित किया जबकि 2022 में 6,000 लागत से 23 हजार रुपए की आमदनी समूह को हुई। सरस्वती श्रीवास बताती हैं कि 2019 में जब सरकार ने स्वयं सहायता समूह को जोड़कर सहायता देना शुरु किया तबसे गांव में कई स्वयं सहायता समूह बन गए। इस वक्त 20 से ज्यादा एसएचजी गांव में काम कर रहे है। मनोज नाग बताते हैं कि लैप्रोसी मिशन में कुष्ठ रोग की जागरुकता के अलावा कई बैठकों में महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति सचेत किया गया। इसकी वजह से भी स्वयं सहायता समूह सशक्त हुए हैं। बहरहाल आमोदा गांव में भेदभाव झेलने वाली महिलाएं न सिर्फ जागरुक हुई हैं बल्कि वह अब लोकल गवर्नेंस को संभाल रही हैं।

फिर चमकने लगे लोहाघाट के लोहे के बर्तन

महिलाएं सरकारी विभाग को कृषि यंत्रों से लेकर मिड डे मील के बर्तनों तक की आपूर्ति कर रहीं

वर्षा सिंह

फोटोः वर्षा सिंह

उत्तराखंड के चंपावत जिले में रायकोट कुंवर गांव में एसएचजी की महिला लोहे के बर्तन तैयार करती हुई

घिसाई और पिटाई के बाद हथौड़े की ठक-ठक से लोहे पर आकृतियां उकेर कर उसे कढ़ाई, तवे, फ्राईपैन जैसे बर्तनों का आकार देने में नारायणी देवी अब कुशल हो गई हैं। पूर्णागिरी स्वयं सहायता समूह की अध्यक्ष नारायणी लौह शिल्प के लिए मशहूर लोहाघाट के रायकोट कुंवर गांव में रहती हैं। जो उत्तराखंड में नेपाल की सीमा से लगते चंपावत जिले में आता है।

लोहे पर कारीगरी से निकलती धुन मंद पड़ने लगी थी। मुनाफा न होने पर लोहाघाट के लोहार अपने इस पुश्तैनी व्यवसाय से मुंह फेर रहे थे। नारायणी देवी कहती हैं, "गांव के पुरुष ही लोहारगिरी का काम करते थे। हम गांव-गांव जाकर सिर पर टोकरी में बर्तन रख बेचा करते थे। कभी एक कढ़ाई बिकती तो कभी दो। इससे परिवार नहीं चलता था। इसलिए ये काम छूट रहा था। लेकिन 2017 में पूर्णागिरी स्वयं सहायता समूह बनाकर हमने इसी काम को शुरू किया। क्योंकि हमें यही काम आता था। डर भी लग रहा था कि औरतें लोहे का काम कहां कर पाएंगी।"

"लोहे को गर्म करके ढलाई के काम में हम गांव के पुरुषों की मदद लेते। लेकिन धीरे-धीरे हमने अपने डर पर काबू पाया। अब हम लोहे की घिसाई-पीटकर बर्तन बनाने, डिजाइनिंग जैसे काम खुद करते हैं।" वह आगे बताती हैं।

पूर्णागिरी स्वयं सहायता समूह बर्तनों के साथ ही कुदाल, फावड़ा, खुरपी समेत कृषि यंत्र, चाकू, खुकरी और त्रिशूल जैसे लौह उत्पाद भी बनाता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में स्वयं सहायता समूहों को बढ़ावा दिया जा रहा था। नारायणी देवी समेत रायकोट कुंवर गांव की महिलाएं भी इस कार्यक्रम का हिस्सा बनीं।

चंपावत में जिला ग्राम्य विकास अभिकरण में सहायक परियोजना निदेशक विम्मी जोशी कहती हैं "वर्ष 2020 में ग्राम्य विकास और उद्योग विभाग ने मिलकर लोहाघाट में ग्रोथ सेंटर बनाया। जहां लोहे की कटाई और मोल्डिंग के लिए मशीनें लगाई गई। जिसके बाद लोहाघाट के लोहे के बर्तनों और कृषि उपकरणों के काम में तेजी आई। कई स्वयं सहायता समूह सेंटर से जुड़ने लगे।"

रायकोट गांव में पूर्णागिरी को मिलाकर 5 स्वयं सहायता समूहों का प्रगति ग्राम संगठन तैयार किया गया। नारायणी देवी इसकी अध्यक्ष हैं। ये संगठन ही ग्रोथ सेंटर का संचालन करता है। नारायणी कहती हैं, "2017 में हमारे समूह ने लौह उत्पादों से सालाना 60-70 हज़ार रुपए तक कमाया। 2022 तक हमारी आमदनी दो लाख रुपए पहुंच गई है। जबकि प्रगति

संगठन की आमदनी 7 से 8 लाख रुपए तक हो गई।"

स्वयं सहायता समूहों के लौह उत्पादों को लेकर सबसे बड़ी समस्या मार्केटिंग की थी। समूह जो उत्पाद बना रहे थे, उसे कहां और कैसे बेचें। नारायणी देवी के बेटे अमित कुमार ने समूहों की इस मुश्किल को हल करने के लिए इस काम का ज़िम्मा लिया।

अमित कहते हैं "स्टील और एल्यूमीनियम के बर्तनों की मांग बढ़ने पर हमारा पुश्तैनी धंधा ठप पड़ रहा था। लेकिन बढ़ती बीमारियों के चलते अब एक बार फिर लोग लोहे के बर्तनों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। ऐसा मानना है कि लोहे के बर्तन में खाना पकाना स्वास्थ्यवर्धक है। हमने देशभर में लगने वाले सरस मेलों में अपने उत्पादों के स्टॉल लगाए। दिल्ली ट्रेड फेयर से लेकर गोवा और मुंबई तक अपने बर्तनों और कृषि उपकरणों को ले गए। हमें अच्छी प्रतिक्रिया मिलने लगी।"

लोहाघाट के स्वयं सहायता समूहों की मेहनत रंग ला रही थी। उत्तराखंड सरकार का ध्यान भी इन लौह उत्पादों की ओर गया। विम्मी जोशी कहती हैं, "हमने कृषि विभाग से समूहों द्वारा बनाए कृषि यंत्रों की खरीद के लिए बात की। अब कृषि विभाग एक साल में 2-3 लाख रुपए तक ऑर्डर देता है। इसके अलावा जिले के 60 सरकारी स्कूलों में मिड-डे-मील बनाने के लिए रसोई के बर्तनों का ऑर्डर भी यहीं से दिया जाता है। आंगनबाड़ी केंद्रों में भी यहां के बर्तन लिए जाते हैं।"

ग्राम्य विकास विभाग के सचिव डॉ बीवीआरसी पुरुषोत्तम कहते हैं "स्थानीय उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए हमने हिलांस ब्रांड बनाया है। लोहाघाट के लौह उत्पाद इस ब्रांड के नाम से बाजार तक पहुंचाये जा रहे हैं। हमने कृषि विभाग को भी पत्र लिखा है कि वे समूहों के बनाए हुए कृषि यंत्र ही खरीदें। कृषि और गैर कृषि आधारित उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए अगले 7 वर्षों में स्वयं सहायता समूहों द्वारा बनाए गए उत्पादों के 11 हजार उद्यम बनाने का लक्ष्य रखा है।"

उत्तराखंड राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन के मुताबिक अब तक करीब 3,41,862 परिवार स्वयं सहायता समूहों से जोड़े जा चुके हैं। 44,995 समूहों को राज्य सरकार प्रोत्साहित कर रही है। इन्हें करीब 36.85 करोड़ रुपए रिवॉल्विंग फंड के तौर पर दिए जा चुके हैं।

लोहाघाट के बर्तन और कृषि यंत्र भी हिलांस ब्रांड से राज्य के ग्रोथ सेंटर्स में रखे जा रहे हैं। ऑनलाइन शॉपिंग वेबसाइट पर भी ये मौजूद हैं। अमित कुमार कहते हैं कि हमारे पास चेन्नई से लेकर देश के दूसरे हिस्सों से ऑर्डर आए। लेकिन पैकेजिंग से जुड़ी मुश्किल आ रही है। लोहे के उत्पाद भारी होते हैं। हमें पैकेजिंग के लिए अभी और काम करना होगा।

महिला सामाख्या कार्यक्रम की निदेशक रह चुकी गीता गैरोला कहती हैं कि महिला स्वयं सहायता समूह तेजी से बनाए जा रहे हैं लेकिन इनकी मॉनीटरिंग नहीं की जा रही है। बहुत से ऐसे समूह हैं जिनके पास उनके उत्पादों को बेचने के लिए बाजार नहीं है।

महिलाएं शहद, मसाले, मशरूम, स्वेटर सबकुछ बना रही हैं लेकिन वे उन्हें बेचे कहां। सरकार ने महिलाओं को इतनी सिलाई मशीनें बांटीं लेकिन पहाड़ में महिला दर्जी नहीं मिलती। समूहों को लेकर सरकार दशकों से कार्य कर रही है। इस लिहाज से देश की औरतों को अपने पैरों पर खड़े हो जाना चाहिए था। लेकिन वे औरतें कहां हैं? गीता कहती हैं कि स्वयं सहायता समूहों की प्रगति से जुड़ा अध्ययन कराने की जरूरत है ताकि हमें सही स्थिति का पता लग सके।

एसएचजी मतलब वोटबैंक

उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य कर रही सामाजिक कार्यकर्ता दीपा कौशलम कहती हैं कि राज्य में बड़ी संख्या में स्वयं सहायता समूह तैयार तो किए गए लेकिन ये अब भी संगठित और मजबूत नहीं दिखाई देते। समूह से जुड़ी महिलाएं छोटे-छोटे फैसलों के लिए ग्राम प्रधान, ब्लॉक प्रमुख या अधिकारियों पर ही निर्भर करती हैं। ज्यादातर स्वयं सहायता समूह सरकारी आयोजनों और मेलों की उम्मीद में काम करते हैं। यदि समूह स्वयं से बड़े प्लेटफॉर्म का उदाहरण दे पाएं तो स्थिति और बेहतर हो सकती है।

दीपा कहती हैं कि एनएरआलएम या एसआरएलएम सरकारी सिस्टम को सपोर्ट करते हैं तो सरकार का नियंत्रण भी समूहों पर कहीं न कहीं रहता है। ग्राम, ब्लॉक स्तर के कार्यक्रमों से लेकर मंत्रियों के दौरों और राजनीतिक कार्यक्रमों में भी समूह की महिलाओं को जाना ही पड़ता है। उनके पास विकल्प नहीं होता। इसलिए सत्ता में मौजूद पार्टी इन्हें राजनीतिक तौर पर प्रभावित करती ही है।

दीपा का आकलन है कि एसएचजी के जरिये स्थानीय समुदाय का विकास भी 15-20 प्रतिशत ही हो सका है। वही समूह आगे बढ़ने में सफल हुए हैं जिन्होंने स्वयं व्यक्तिगत तौर पर पहल की है।

उत्तराखंड के एसएचजी को लेकर *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बेसिक एंड अप्लाइड एग्रीकल्चरल रिसर्च* में वर्ष 2017 में लिखे गए एक शोधपत्र के मुताबिक राज्य में बड़ी संख्या में समूह निष्क्रिय पाए गए। अध्ययन के मुताबिक 11.70 फीसदी समूहों ने 1-3 वर्ष तक काम किया, 33.75 फीसदी समूहों ने 3-5 वर्ष तक काम किया जबकि सिर्फ 16.50 फीसदी समूहों ने 5 से अधिक वर्ष तक काम किया। 37.75 फीसदी समूह काम करते रहे।

अध्ययन के मुताबिक गठन के बाद समूहों को प्रोत्साहित नहीं किया गया न ही इनके कार्यों की मॉनीटरिंग की गई और ज्यादातर समूह निष्क्रिय होते चले गए।

देहरादून के विकासनगर का रौनक स्वंय सहायता समूह खजूर के पत्तों से ज्वैलरी बनाने का काम करता रहा है। इस समूह की अध्यक्ष नज़मा इकबाल कहती हैं ये एसएचजी सिर्फ वोटबैंक के लिए ही बनाए गए हैं। सरकारों को लगता है कि गरीब महिलाओं को थोड़ा बहुत पैसा दे दो ये चुप बैठ जाएंगी। वे अपने कार्यक्रमों में समूहों को 20-25 हजार या एक-दो लाख रुपए के चेक दे दिए जाते हैं। ऐसा करके सरकार अपना बचत ही तो करती है और हमें वो रकम ब्याज के साथ लौटानी होती है।

राजनीतिक विश्लेषक दिनेश जुयाल कहते हैं कि स्कूल-कॉलेज के संगठनों से लेकर महिला स्वयं सहायता समूह या महिला मंगल दल, युवक मंगल दल राजनीतिक लोगों की नर्सरी बन गए हैं। कई बार एसएचजी की अगुवाई कर रहे लोग भी सीधे तौर पर राजनीतिक दलों से जुड़े हुए हैं। जिनके पास सत्ता होती है उनकी पकड़ इन पर बन जाती है।

फोटोः रोहित पराशर

चीड़ की पत्तियों ने संवारी जिंदगियां

महिलाएं चीड़ की पत्तियों से सजावटी सामान बनाकर प्रत्येक माह 20 हजार रुपए तक की कमाई कर रहीं

रोहित पराशर

जंगलों में आग का मुख्य कारण बन पर्यावरण को बेहद नुकसान पहुंचाने वाली चीड़ की पत्तियां ग्रामीण परिवेश की महिलाओं की आर्थिकी को इस कदर सुदृढ करेगी, ऐसा किसी ने भी नहीं सोचा था। लेकिन यह सच कर दिखाया है हिमाचल के सोलन जिले की माही पंचायत के ज्योति स्वयं सहायता समूह की 35 सदस्यों ने। ज्योति स्वयं सहायता समूह ने बेकार पड़ी चीड़ की पत्तियों को अपनी आजीविका का मुख्य साधन बना लिया है। वर्ष 2018 में शुरू हुए इस समूह की प्रत्येक महिला सदस्य अब चीड़ की पत्तियों से बने उत्पादों को बेच कर प्रत्येक माह 20 हजार रुपए तक की कमाई कर रही हैं। समूह की अध्यक्षा अनिता ठाकुर ने *डाउन टू अर्थ* को बताया कि जब उन्होंने यह काम शौक के तौर पर शुरू किया और उन्हें यह बिल्कुल भी अंदाजा नहीं था कि इससे उन्हें हर माह 20 से 30 हजार हजार रुपए के बीच में कमाई होगी। वे बताती हैं कि जब उन्होंने इस काम को शुरू किया था तो लोग उन्हें हीन भावना से देखते थे, लेकिन जब मेरे साथ महिलाएं जुड़ती गई और सभी को अच्छी कमाई होने लगी तो लोगों की धारणा भी उनके प्रति बदल गई है।

ज्योति स्वयं सहायता समूह अपनी पंचायत की महिलाओं की आर्थिक स्थिति को ठीक करने के साथ-साथ आस-पास की पंचायतों में गांव की महिलाओं को भी चीड़ की पत्तियों से बनने वाले सुंदर उत्पादों को बनाने का प्रशिक्षण देने का काम कर रही हैं। समूह की सदस्या सुनिता ठाकुर ने बताया कि अभी तक उनका समूह 800 से अधिक महिलाओं को प्रशिक्षण दे चुका है। वे बताती हैं कि हम सभी महिलाएं एक व्हाट्सअप ग्रुप के माध्यम से जुड़ी हुई हैं और जब भी हमें कोई बड़ा ऑर्डर आता है तो हम सब मिलकर बैठक करती हैं और सारे काम को आपस में बांटकर पूरा कर लेती हैं। हमारे साथ लगते गांव बघास, हाठू, मलई, कलहोग और अन्य गांव की महिलाएं जुड़

हिमाचल प्रदेश में सोलन जिले के माही पंचायत में महिलाएं चीड़ के पत्तों से बने उत्पादों की बिक्री करती हुईं

चुकी हैं।

ज्योति स्वयं सहायता समूह की ओर से ज्यादातर घरों में प्रयोग होने वाली चीजें तैयार की जाती हैं। इनमें चाय परोसने के लिए ट्रे,टी कोस्टर, सजावटी शीशा, रोटी रखने के लिए टोकरी, फल रखने की टोकरी, पैन स्टैंड के साथ अब चीड़ की पत्तियों से बनी सुंदर ज्वैलरी भी शामिल है।

समूह की अध्यक्षा अनिता ठाकुर ने बताया कि हम मार्च माह में जब चीड़ के पेड़ों से पत्तियां गिरती हैं उस समय उन्हें एकत्रित कर घर ले आती हैं और साल भर के लिए जमा कर लेती हैं। इससे जंगलों में आग की घटनाएं भी कम होती हैं। इसके अलावा हम सभी महिलाएं मिलकर जंगलों में आग की घटनाएं न हो इसके लिए समय-समय पर जंगलों की निगरानी के साथ फायर लाइन बनाने में भी मदद करती हैं।

अनिता ने बताया कि हमारे समूह ने चीड़ की पतियों से बने उत्पादों को ऑनलाइन अमेजॉन में भी बेचना शुरू किया था, लेकिन ज्यादा मांग को पूरा न कर पाने की सूरत में उसे बंद कर देना पड़ा। उन्होंने बताया कि 2018 में हम 4 महिलाओं ने इस काम को करना शुरू किया था। उस समय मुझे 1200 रूपये की कमाई हुई थी जो आज बढ़कर 20 से 30 हजार तक पहुंच गई है वहीं 4 महिलाओं से आज हमारे समूह में ही 35 महिलाएं लगातार इस काम कर रही हैं और सैकड़ों और महिलाएं अपना घर इसी काम से चला रही हैं।

अनिता बताती हैं कि हमारे समूह ने बैंक से समूह के नाम पर 3 लाख रुपए का लोन भी लिया था जिसे हमने चीड़ की पत्तियों से बने उत्पादों से हुई कमाई से ही समय पर चुकता कर दिया है। अनिता ठाकुर का कहना है कि जैसे-जैसे हमारे उत्पाद लोग देख या खरीद रहे हैं तो इससे हमारे उत्पादों की मांग बहुत अधिक बढ़ गई है। इस मांग को पूरा करने के लिए हमें और महिलाओं को अपने साथ जोड़ने की जरूरत है। जब अधिक महिलाएं जुड़ेंगी तो उससे उन्हें भी आर्थिक लाभ मिलेगा और हमारे उत्पादों को और अधिक पहचान मिलेगी।

चीड़ के पत्ते से तैयार एक खूबसूरत बास्केट

फोटो: रोहित पराशर

ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं को आर्थिक रूप सुदृढ बनाने के लिए हिमाचल प्रदेश राजकीय ग्रामीण आजीविका मिशन के तहत प्रदेश के सभी विकासखंडों में काम किया जा रहा है। इस योजना के तहत वर्ष 2019-20 में 19 करोड़, वर्ष 2020-21 में 21.50 करोड़ 2021-22 में 40.23 करोड़ और 2022-23 में 40.24 करोड़ रुपए के बजट का प्रावधान किया गया है। हिमाचल प्रदेश राजकीय ग्रामीण आजीविका मिशन के डाटा के अनुसार पिछले वर्ष 17,939 महिला स्वयं सहायता समूहों को रिवॉल्विंग फंड के तौर पर 3,210 करोड़ रुपए दिए गए हैं। इसके अलावा स्वयं सहायता समूहों के उत्पादों को पहचान दिलाने के लिए मिशन के तहत सरस मेलों को आयोजन किया जा रहा है। जिसमें महिलाओं के उत्पादों को प्रदर्शित और बेचा जाता है। हिमाचल में स्वयं सहायता समूहों की ओर से तैयार किए उत्पादों को हिम ईरा ब्रांड से भी बेचा जाता है इसके लिए तीन स्थानों पर दुकानें भी खोली गई है। इससे न सिर्फ इन महिलाओं की आर्थिक स्थिति बेहतर हो रही है, बल्कि ये समाज में अच्छा नाम भी कमा रही हैं। जिससे अन्य महिलाएं भी प्रभावित होकर स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से अपने आप को सशक्त करने के लिए प्रेरणा पा रही हैं।

बढ़ी अहमियत

राजनीतिक विशलेषक संदीप उपाध्याय *डाउन टू अर्थ* को बताते हैं कि हिमाचल प्रदेश में किसी भी सरकार को बनाने और हटाने में महिलाओं का अहम योगदान रहा है। उन्होंने बताया कि हिमाचल में कोई भी सरकार रही हो वो महिलाओं को रिझाने के लिए काम करती रही है। चाहे पिछली सरकार में महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों को और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए आर्थिक मदद करने की बात हो या फिर महिलाओं के लिए बस किराए में छूट हो। सरकारें महिलाओं के महत्व को समझते हुए उन्हें केंद्र में रखकर कई नीतियों का निर्माण करती है। ऐसा हाल ही में संपन्न हुए चुनावों के दौरान कांग्रेस पार्टी की ओर से किया गया। कांग्रेस पार्टी की ओर से महिला मतदाताओं को रिझाने के लिए प्रत्येक महिला को 1500 रुपए की पेंशन देने की गारंटी दी गई थी जिसका खासा असर चुनावों में देखने को मिला और कांग्रेस पार्टी ने स्पष्ट बहुमत के साथ प्रदेश में सरकार बनवाई। गौर रहे कि हिमाचल प्रदेश में 27 लाख महिला मतदाता हैं और इन महिलाओं के रिझाने और इन्हें अपने पक्ष में करने के लिए सत्तारूढ़ दल हमेशा महिला हितैषी नीतियों का निर्माण करते हैं। इसका अंदाजा सरकार के हरेक कार्यक्रम, मेलों और अन्य कार्यक्रमों में महिला स्वयं सहायता समूहों की सुनिश्चित की गई भागीदारी से भी लगाया जा सकता है। सरकार के हरेक कार्यक्रम में स्थानीय महिलाओं के स्वयं सहायता समूहों के उत्पादों को प्रदर्शित करने के साथ उन्हें इन कार्यक्रमों में सम्मानित भी किया जाता है। वर्तमान में प्रदेश में 49561 स्वयं सहायता समूह बनाए गए हैं और इनमें 422475 महिलाएं पंजीकृत हैं। इतनी संख्या में महिलाओं को अपने पक्ष में रखने के लिए सरकारें, राजनीतिक दल और नेता विभिन्न माध्यमों से उनकी मदद करते रहते हैं।

रेशों से बुन रहीं जिंदगी

केले के 80 फीसदी बेकार समझे जाने वाले हिस्से से महिलाएं रेशा निकालकर आकर्षक उत्पाद तैयार कर रहीं

विवेक मिश्रा

नजदीक के केले के खेत से एक ट्रैक्टर में पेड़ के तने लदकर श्रावस्ती के मोहम्मदपुर गांव में पहुंच गए हैं। बौद्धांचल स्वयं सहायता समूह की महिलाओं के बीच हलचल तेज हो गई हैं। अब समूह की कुछ महिलाओं का काम इन तनों को बीच से काटकर एक बिजली चालित मशीन में डालकर रेशों को निकालना होगा। वहीं, समूह की कुछ महिलाएं इन रेशों को सुखाएंगी और कुछको इन रेशों को रंगना होगा। अंत में ग्रामीण हस्त उत्पाद बनाने वाली कुशल महिलाएं इन रेशों से टिकाऊ उत्पाद तैयार करेंगी। यह सारा काम अब इन स्वयं सहायता समूह की महिलाओं के लिए रोजमर्रा के आजीविका का काम हो गया है। वह केले के पेड़ में बेकार समझे जाने वाले कृषि अवशेष से ऐसे पर्यावरण हितैषी उत्पाद तैयार कर रही हैं जो श्रावस्ती आने वाले पर्यटकों और आस-पास के शहरों में न सिर्फ काफी पसंद किया जा रहा है बल्कि उनकी आजीविका के लिए एक प्रमुख औजार बन गया है।

बौद्धांचल स्वयं सहायता समूह की नींव रखने वाली तेजस्वी पाठक बताती हैं, "गांव में लोग पहले से ही टिकाऊ जीवनशैली जी रहे हैं। उन्हें पर्यावरण को कम नुकसान पहुंचाने वाले उत्पादों का महत्व बताने पर बात ज्यादा जम नहीं रही थी। हम स्वयं सहायता समूह के जरिए पर्यावरण हितैषी काम करना चाहते थे। जब हमारे दैनिक और फैशन संबंधी उत्पादों के खरीददार मिलने शुरू हुए तो गांव की महिलाओं ने भी इसमें दिलचस्पी दिखाई। अब गांव में 50 महिलाएं स्वयं सहायता समूह से जुड़ी हैं जिन्हें पर्यावरण हितैषी और टिकाऊ जीवनशैली वाले उत्पाद बनाने में महारथ हासिल हो गई है।"

तेजस्वी ने कर्नाटक के बंग्लुरू में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ फैशन टेक्नोलॉजी से कोर्स किया और कोरोना संकट के वक्त देश के सबसे गरीब माने जाने वाले जिले श्रावस्ती को मोहम्मदपुर गांव में महिलाओं के बीच काम करने का निर्णय लिया। कोरोना संकट के वक्त वह बंग्लुरु की एक निजी कंपनी के लिए घर से काम कर रही थीं।

इस दौरान उन्हें केले और जूट से उत्पाद तैयार करने वाली एसएचजी बनाने का ख्याल आया और वह इस काम में लग गईं। फरवरी से मार्च, 2022 के बीच गांव की महिलाओं को

उत्तर प्रदेश के श्रावस्ती जिले में केले के रेशे से तैयार ज्वैलरी और हैंडीक्राफ्ट उत्पादों की प्रदर्शनी व बिक्री

फोटोः विवेक मिश्रा / सीएसई

जुटाया और उन्हें क्राफ्ट का प्रशिक्षण देकर सक्षम बनाया। वह बताती हैं बौद्धांचल समूह जूट और केले के रेशों से बैग, टोकरी, ज्वैलरी, चप्पल और अन्य दैनिक उत्पाद तैयार करके बिक्री करती है।

बौद्धांचल स्वयं सहायता समूह जनवरी, 2022 से काम कर रहा है लेकिन इसने रफ्तार तब पकड़ी जब जिले के भूमि संरक्षण अधिकारी डॉक्टर शिशिर वर्मा ने महिलाओं को अक्तूबर, 2022 में केले के रेशे निकालने वाली मशीन दी। शिशिर वर्मा के मुताबिक केले के खेतों में पेड़ का 80 फीसदी भाग कचरे के रूप में फेंक दिया जाता था। जबकि इसके तने से रेशे निकालकर उनका उपयोग किया जा सकता है।

स्वयं सहायता समूह को शुरुआत में पश्चिम बंगाल से जूट और गोरखपुर से केले के रेशे मंगाने पड़ते थे। लेकिन मशीन आने के बाद महिलाओं ने पास में ही केला किसानों से कृषि अवशेष के लिए करार कर लिया है। समूह की प्रमुख आर्टिसन अरुणिमा पांडेय बताती हैं कि अब वह कई अन्य समूहों को इसका प्रशिक्षण दे रही हैं। गांव में क्राफ्ट सीखने के लिए महिलाएं लगातार आगे आ रही हैं। समूह की सदस्य माधुरी कुमारी बताती हैं कि उनके पति ने शराब के चक्कर में समूचे खेत बेच दिए। घर में जो सरकारी अनाज आता था, उसका कुछ हिस्सा ताजी सब्जी खरीदने के लिए बेचना भी पड़ता था। चार बच्चे हैं जिनकी पढ़ाई-लिखाई ठप हो गई थी। समूह में क्राफ्ट प्रशिक्षण लेने के बाद से अब वह प्रतिमाह से 7 से 10 हजार रुपए कमा लेती हैं। वह बताती हैं कि एक किलो केले के रेशे की लागत 150 रुपए के आसपास आती है और इससे 500 रुपए की कीमत का उत्पाद वह तैयार कर लेती हैं। करीब 350 रुपए उनके पास आ जाते हैं।

बौद्धांचल समूह पर्यावरण हितैषी उत्पाद तैयार करके महीने में 1 से 1.5 लाख रुपए तक अर्जित कर रहा है। श्रावस्ती का मोहम्दपुर गांव राप्ती नदी के बाढ़ से प्रभावित है। यहां का मूल पेशा कृषि और रोजगार है। महिलाएं ज्यादातर खेती-किसनी के काम में लिप्त रहती हैं। लेकिन महिलाओं के बीच क्राफ्ट के हुनर ने उम्मीद की एक नई रोशनी पैदा कर दी है।

समूह की सदस्य माधुरी कुमारी बताती हैं कि उनके पति ने शराब के चक्कर में समूचे खेत बेच दिए। घर में जो सरकारी अनाज आता था, उसका कुछ हिस्सा बेचना भी पड़ता था। चार बच्चे हैं जिनकी पढ़ाई-लिखाई ठप हो गई थी। समूह में क्राफ्ट प्रशिक्षण लेने के बाद से अब वह प्रतिमाह से 7 से 10 हजार रुपए कमा लेती हैं। वह बताती हं कि एक किलो केले के रेशे की लागत 150 रुपए के आसपास आती है और इससे 500 रुपए की कीमत का उत्पाद वह तैयार कर लेती हैं। करीब 350 रुपए उनके पास आ जाते हैं।

उत्तर प्रदेश में केंद्र की योजनाओं के अलावा राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन के जरिए कई महिला समूहों को गैर कृषि कार्यों के उद्यम से भी जोड़ा जा रहा है। मिसाल के तौर पर घर-घर पोषण पहुंचाने का काम हो या फिर सस्ती दर पर ऋण मुहैया कराने की बात हो। खासतौर से कोविड के बाद राज्य सरकार ने कई कृषि उद्यमों से महिलाओं को जोड़ा है। इस वक्त राज्य में करीब 6.90 लाख पंजीकृत एसएचजी है।

अतिथि देवो भव करती महिलाएं

केरल में 3,500 महिला रसोइयों और कैटर्स का नेटवर्क खुद की प्रगति के साथ निर्धनों की मदद भी कर रहा है

के ए शाजी

कोई पंद्रह साल पहले केरल की तीर्थनगरी गुरुवायुर की स्कूल शिक्षिका रती कुन्नीकृष्णन ने जमीनी स्तर पर स्वयं-सहायता समूहों (एसएचजी) के माध्यम से गरीबी उन्मूलन और महिला सशक्तिकरण के उद्देश्य से आरंभ की गई राज्य सरकार की प्रमुख योजना कुदुंबश्री से संपर्क किया था। उनका

फोटो: के ए शाजी

उद्देश्य स्कूल से ड्रॉपआउट मामूली ग्रामीण महिलाओं को बड़े पैमाने पर खाना पकाने और कैटरिंग जैसों से कामों में प्रशिक्षित करना था। हालांकि राठी खुद पेशेवर नहीं थे और उनके पास एक स्पष्ट योजना भी नहीं थी।

49 वर्षीया रती बताते हैं "अधिकतर ग्रामीण महिलाएं बढ़िया खाना पकाती हैं, और अपने इस हुनर में प्रयोग करने को लेकर भी वे बहुत उत्सुक रहती हैं। लेकिन उनके पास अवसर नहीं थे।" बहरहाल अब इन महिलाओं ने कुछ अलग कर दिखाया है। रती मध्य केरल के त्रिशूर में ए.आई. एफ.आर.एच.एम. या "अधेबा" इंस्टिट्यूट ऑफ फूड रिसर्च हॉस्पिटैलिटी मैनेजमेंट नाम से एक अनोखा स्वयं-सहायता समूह संचालित करती हैं। "अधेबा" का क्या अर्थ होता है? राठी फौरन इस सवाल का जवाब देती हैं, यह 'अतिथि देवो भव' का संक्षिप्त रूप है।

"अधेबा" की शुरुआत कुदुंबश्री की स्थापना के केवल दस वर्ष बाद ही हुई थी। आज कुदुंबश्री अपनी स्थापना का पच्चीसवां साल पूरा कर चुकी है। इस अवधि में इसने केरल में 3.09 लाख स्वयं-सहायता समूहों की स्थापना की है जो आज पूरे राज्य में सुसंगठित और व्यवस्थित रूप से सक्रिय हैं। इन स्वयं-सहायता समूहों में "अधेबा" इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह कुदुंबश्री से संबद्ध प्रत्येक स्वयं-सहायता समूह से उन औरतों का चयन करती है जो भोजन बनाने की कला में दक्ष हों। आज कुदुंबश्री दूसरे काम के अलावा देश भर में महिला कैटरर्स के सबसे बड़े नेटवर्क को संचालित करती है। ये महिलाएं शीघ्र सूचना के आधार पर किसी भी बड़े आयोजन के लिए खाना पका सकती हैं, चाहे वह अनेक दिनों तक चलने वाले राष्ट्रीय खेल हों अथवा कोई अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन। महिलाएं किसी भी तरह का भोज मसलन चीनी व्यंजन, भूमध्यसागरीय, यूरोपीय, उत्तर भारतीय, दक्षिण भारतीय या स्थानीय बना सकती हैं।

स्कूलों से ड्रॉपआउट गरीब महिलाएं अधेबा स्वयं सहायता समूह प्रशिक्षण लेकर विभिन्न संस्थानों में कैटरिंग का काम बखूबी संभाल रही हैं

"हम कैटरिंग की आधुनिकतम तकनीकों का इस्तेमाल करते हैं और बहुत कम कीमत पर भोजन उपलब्ध कराते हैं। अर्जित पैसों को निर्धन परिवारों को आर्थिक रूप से सशक्त बनाने में खर्च किया जाता है। रती बताती हैं शुरुआत में "अधेबा" में महज सात सदस्य थे, आज यह विस्तृत होकर 3000 सदस्यों का एक विशाल समूह बन चुका है। 200 महिलाओं को सीधा रोजगार देने के अलावा पूरे राज्य में 3500 महिला रसोइयों और कैटर्स के नेटवर्क को संचालित करता है। इसके प्रशिक्षित स्टाफ आंध्रप्रदेश और झारखण्ड के कुछ इच्छुक महिला एसएचजी को यही प्रशिक्षण देने का काम भी करते हैं।

एक साल से भी अधिक की अवधि तक कुदुंबश्री के आउटरीच शाखा में प्रतिनियुक्त प्रो. मैना उमैबान के अनुसार, एक सुरक्षित भविष्य के लिए इच्छुक महिलाओं को सहारा देने और उन्हें प्रशिक्षित करने की दृष्टि से "अधेबा" की भूमिका दुर्लभ है। इसी भूमिका से प्रभावित होकर प्रो. उमैबान इस समूह को अपनी सेवा के लिए प्रेरित हुईं। अपनी शुरुआत के बाद के सालों में अधेबा ने 35,000 महिलाओं को भोजन पकाने और कैटरिंग के कामों में बुनियादी प्रशिक्षण देने का काम किया है। एक पखवाड़े के इस सघन प्रशिक्षण कार्यक्रम का पूरा खर्च राज्य सरकार ने उठाया। प्रशिक्षुओं में से 15,000 को चयनित कर उन्हें विविध विशेज्ञता में प्रशिक्षित किया गया ताकि उन्हें स्थानीय स्तर पर छोटे कैटरिंग इकाइयों को चलाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके।

विगत वर्षों 3500 सदस्यों का एक अति दक्ष समूह विकसित हो चुका है जो अब "अधेबा" की रीढ़ की हड्डी के रूप में काम कर रहा है। भोजन तैयार करने के अतिरिक्त "अधेबा" आज के दिन महिलाओं को भोजन सर्व करने, बुनियादी साफ-सफाई और हिसाब-किताब रखने जैसे काम भी सिखा रहा है।

इस योजना की लाभुकों में एक वीके शेरीबा बताती हैं कि वे ग्राहकों की मांग के मुताबिक किसी भी प्रचलित क्रिस्म का कोई भी व्यंजन बनाने में सक्षम हैं। अभी एक महीना पहले जब कोच्चि अंतर्राष्ट्रीय हवाईअड्डे के निकट पंचायती राज पर एक राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित किया गया था जिसमें भारत के सभी राज्यों के प्रतिनिधि शामिल हुए थे। शेरीबा ने बताया "हमने तीन दिन तक प्रतिदिन 15,000

लोगों को खाना देने की व्यवस्था की थी, और वे सभी लोग अलग-अलग स्वाद और आहार-संबंधी आदतों वाले लोग थे। हमने उन सबके लिए उत्तर भारतीय, चीनी व्यंजन, पूर्वोत्तर और दक्षिण भारतीय खाने की व्यवस्था की थी और हमारे द्वारा की गई व्यवस्था के लिए अतिथियों ने हमें खूब सराहा।

मैना बताती हैं कि "अधेबा" की शुरुआत से पहले कैटरिंग कर व्यवसाय में गिनी-चुनी महिलाएं ही थीं। जब रती और उनकी टीम ने अपनी योजना के साथ कुदुंबश्री से संपर्क किया, तब एजेंसी ने उन पर "औषधि" का प्रभार संभालने और उसकी कैंटीन चलाने की जिम्मेदारी सौंपी। "औषधि" त्रिशूर में सार्वजनिक क्षेत्र की एक दवा बनाने वाली कंपनी है जिसमें लगभग 2,000 लोग काम करते हैं। राठी बताती हैं कि "औषधि" के पास सभी जरूरी बुनियादी और वित्तीय सुविधाएं उपलब्ध थीं, ऐसे में हमारे लिए शुरुआत करना कोई बहुत मुश्किल काम नहीं था। इसलिए हमने "औषधि" में मिलने वाली सुविधाओं का इस्तेमाल अपनी महिलाओं को खाना बनाने और कैटरिंग का काम करने के लिए प्रशिक्षित करने करने में किया। साथ ही हमने कंपनी के स्टाफ की भोजन-संबंधी जरूरतों को पूरा करना भी जारी रखा। फिलहाल यह संस्था केरल सरकार के एक विशाल भोजनालय को संभालती है जिसमें कोच्चि के निम्न-आय वर्ग के कर्मचारियों को केवल 20 रुपए में भरपेट भोजन कराया जाता है। 3500 से भी अधिक लोग इस रेस्टोरेंट में खाना खाते है जिसमें सरकार भोजन की हर थाली के बदले 10 रुपए का अनुदान देती है। बाकी खर्च के लिए पैसे "अधेबा" मछलियों की किस्में, मटन की किस्में और दूसरे मूल्य-संवर्धित उत्पादों की बिक्री से कमाती हैं।

यह मलप्पुरम के सिविल स्टेशन की कैंटीन भी संचालित करती हैं, जहां लगभग 400 लोग इससे लाभान्वित होते हैं। "अधेबा" में विभिन्न कामों में समन्वय करने वाले अजय कुमार के अनुसार, केरल में जब कभी राष्ट्रीय खेलों का आयोजन होता है तब "अधेबा" ही इस आयोजन का आधिकारिक कैटरर्स होगी। वे बताते हैं "अभी तक राष्ट्रीय खेलों के आयोजनों में हमने तीन मौकों पर खानपान की व्यवस्था संभाली है जिनमें बड़ी तादाद में दूसरे राज्यों से आए भागीदार शामिल हुए हैं। हम शादी-विवाह की पार्टियों, अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशनों और अन्य उच्चस्तरीय आयोजनों के लिए भी आर्डर लेने का काम करते हैं। हमारी ग्रामीण महिलाएं इन मौकों पर पेशेवर परिधान पहनती हैं और उनकी सेवाएं गुणात्मकता की दृष्टि से उच्चस्तरीय होती हैं। राठी कहती हैं "यदि आप केरल के 14 जिलों में कहीं भी कोई आयोजन करते हैं तो हमसे संपर्क कर सकते हैं, और हमारी सुविधाओं का लाभ उठा सकते हैं। हम अपनी गुणवत्ता, कीमत, स्वाद और स्वच्छता के प्रति दृढ़प्रतिज्ञ," उनकी यह पहल लाभ पर आधारित नहीं है क्योंकि इससे होने वाली आमदनी को संबद्ध परिवारों में बांट दिया जाता है।

जल जीवन बांटती महिलाएं

कभी पानी को तरसने वाली महिलाएं आज गांव में पानी की जांच करने से लेकर जल कर तक वसूल रही हैं

रूबी सरकार

ग्रामीण जल जीवन मिशन के अंतर्गत घरों में नल से जल उपलब्ध होने से महिलाओं और किशोरी बालिकाओं को सबसे अधिक लाभ मिलने लगा है, किशोरियां स्कूल जाने लगी हैं, तो महिलाएं रोजगार के नए-नए साधन ढूंढ़कर अपनी आजीविका में सुधार ला रही हैं। लेकिन यह इतना आसान नहीं था। पानी के लिए दशकों तक ग्रामीण महिलाओं को संघर्ष करना पड़ा है तब जाकर जल जीवन मिशन के तहत उनके घरों में पेयजल की आपूर्ति संभव हुई और अब पानी की जांच संबंधी प्रशिक्षण पाकर समूह की महिलाएं अपनी आजीविका चला रही हैं। हर गांव में महिला समूहों ने मिलकर जल समिति का गठन किया है, जो ग्रामीणों के जलप्रदाय की देखरेख कर रही हैं। इसके लिए जल निगम की ओर से ग्रामीण महिलाओं को पानी संबंधी प्रशिक्षण दिए गए हैं। जिसके तहत महिलाएं पेयजल की जांच करने के साथ जल की बर्बादी रोकने के लिए निगरानी करती हैं। इसके अलावा समिति की महिलाएं घर-घर जाकर जल का कर वसूलती हैं। यदि किसी तरह की शिकायत होती है तो वह तत्काल फोन से अधिकारियों को सूचित करती हैं और जल जनित बीमारियों की जानकारी देना उनका काम बन चुका है। इन महिलाओं को पेयजल परीक्षण के लिए किट भी उपलब्ध करवाया गया है। पेयजल की देखरेख और जांच के मामले में ग्रामीण महिलाएं अब पूरी तरह चैंपियन बन चुकी हैं। छिंदवाड़ा जिले के मऊ ग्राम पंचायत की महिलाओं ने *डाउन टू अर्थ* के साथ अपने अनुभव साझा किए।

ग्राम पंचायत मऊ की अनिता चौधरी जल समिति की अध्यक्ष हैं। उन्होंने बताया कि मोहखेड़ा ग्रामीण जल प्रदाय योजना में सिर्फ बरसात का पानी स्टोर किया जाता है। और इस पानी का शोधन करने के बाद न सिर्फ मऊ ग्राम पंचायत में बल्कि आस-पास के 30 अन्य गांवों की प्यास इसी पानी से बुझाई जा रही है। अकेले मऊ ग्राम पंचायत में करीब 623 नल कनेक्शन हैं।

मऊ ग्राम में गर्मी के दिनों में टैंकर से पानी सप्लाई होता था, जिसके लिए गांव की महिलाओं को लंबी कतारों में लगना होता था। साथ ही पानी हासिल करने के लिए उन्हें बड़ा वक्त खर्च करना पड़ता था।

जल समिति की अध्यक्ष अनिता ने कहा कि जितना

फोटोः रूबी सरकार

मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा जिले की मऊ गांव के प्रेरणा स्वयं सहायता समूह की महिलाएं पानी की गुणवत्ता का मानक दिखाती हुईं

समय पहले पानी के पीछे चला जाता था, उसे अब महिलाएं रोजगार में लगाकर अपनी आय बढ़ा रही हैं । अनिता इस काम के अलावा एक दुकान भी संचालित करती हैं। जहां से उन्हें प्रतिमाह 4,000 रुपए की आय हो रही है। इस आय से वह परिवार की मदद करती है और उनका जीवन स्तर भी पहले की अपेक्षा काफी बेहतर हुआ है। इन सब कारणों से वह जलकर वसूली में ज्यादा रुचि लेती हैं, ताकि यह सिलसिला थमे नहीं।

इसी तरह ग्राम मऊ से प्रेरणा स्व सहायता समूह की सचिव सविता ढोबले बताती है कि पानी के लिए दो किलोमीटर तक का सफर तीन गुंडी (मटका) सिर पर रखकर तेज कदमों से चलकर जाना पड़ता था। वहां कुएं में रस्सी डालकर पानी खींचने से हाथों में छाले पड़ जाते थे, लेकिन मदद के लिए कोई आगे नहीं आता था, उसी तकलीफ में 25 लीटर पानी सिर पर रखकर लाना पड़ता था। इसके अलावा पानी के लिए लंबी लाइन लगानी पड़ती थी, इससे समय अधिक लग जाता था। कुएं से चार-पांच महिलाएं इकट्ठे पानी खींचने लगती थी, यह सोचकर कि कहीं पानी खत्म न हो जाए। ऐसा भी होता था, जिनका कुआं है, वह पानी भरने से मना करते थे, अगर महिलाएं नहीं मानी, तब वे कुएं में गोबर डाल देते थे, महिलाओं को अपमानित करते थे। ऐसे में आए दिन खाली गुंडी वापस घर लाना पड़ता था। कभी-कभी तो गुंडी को ही फोड़ देते थे। वह दर्द कभी भुलाया नहीं जा सकता। यहां लोगों के पास बहुत छोटे-छोटे खेत है, जिसके चलते पुरुषों को काम के लिए पलायन करना पड़ता है और महिलाएं दिन भर पानी के पीछे भाग दौड़ करती थी। इससे बच्चों का जीवन प्रभावित होता था। लेकिन अब हालात बदल गए हैं।

प्रेरणा स्वयं सहायता समूह से जुड़ी प्रीति बताती हैं कि घर पर पानी की आपूर्ति होने के बाद से वह सिलाई का काम करने लगी हैं। अब परिवारों में पहले जैसा तनाव नहीं है। गांव में अब पानी को लेकर चर्चा भी कम होने लगी है। प्रीति भी अन्य महिलाओं के साथ जल कर वसूलने में साथ देती हैं। वह कहती हैं कि महिलाएं अपनी कमाई से ही जलकर अदा कर देती हैं।

संत रविदास सहायता समूह की सचिव संध्या बघेल अब अपना समय गांव में लैंगिक समानता के लिए जागरूक करने में लगाती हैं। उन्होंने कहा कि दूषित पानी से होने वाली डायरिया उल्टी दस्त जैसी बीमारियां भी अब गांव में नहीं देखी जाती। बच्चे भी पहले की अपेक्षा कम कुपोषित हैं। घरेलू हिंसा में भी कमी आई है। कुल मिलाकर महिलाएं जागरूक हुई हैं। और पानी के काम ने इनका जीवन स्तर सुधार दिया है।

प्रयोग की नर्सरी

आस-पास के गांव से अब गन्ना किसान नर्सरी में पौधों के लिए आने लगे हैं, साल-दर-साल मांग बढ़ती जा रही है...

विवेक मिश्रा

मंजू देवी, एक स्वयं सहायता समूह की अध्यक्ष एक गन्ने की नर्सरी को निहार रही हैं। करीब एक हेक्टेयर में फैली इस नर्सरी में उन्नत किस्म वाले गन्ने के पौधों में कल्ले फूट चुके हैं। वह इस बार काफी खुश हैं। नर्सरी में इस साल करीब 5 लाख पौधे तैयार होंगे जो 2020 के मुकाबले दोगुना से भी ज्यादा हैं। नर्सरी के सभी पौधे जल्द ही बिक जाएंगे। इन्हें समूह की महिलाएं गन्ना किसानों को बुआई के लिए वितरित कर देंगी। समूह की महिलाएं एक साल में दो सीजन में यह काम करती हैं, जिसने उनकी न सिर्फ जीवनशैली में सुधार किया है बल्कि उनके घर के पुरुषों को भी रोजगार के साधन मिल गए हैं।

उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में करनीपुर गांव में प्रेरणा नाम का स्वयं सहायता समूह (एसएचजी) बीते तीन वर्षों से कृषि आधारित यह अनोखा प्रयास कर रहा है। समूह की अध्यक्ष मंजू देवी बताती हैं कि "2020 में कोरोना संकट के समय शरद ऋतु से शुरू की गई इस पहल की कोशिश इतनी जल्दी रंग लाएगी, यह मैंने नहीं सोचा था। अब हर सीजन में गन्ना किसानों की तरफ से पौधे के लिए मांग बढ़ती जा रही है। हमारे समूह की महिलाएं जो दूसरे जिलों और राज्यों में काम करने के लिए जाती थीं। अब यहीं रुक गई हैं।"

खेती-किसानी से जुड़े इस स्वयं सहायता समूह की शुरुआत कोरोना संकट के समय हुई थी। समूह का मार्गदर्शन करने वाले गोंडा के गन्ना उपायुक्त ओपी सिंह *डाउन टू अर्थ* से बताते हैं कि पोरट्रे जिसमें खाद भरकर गन्ने के बड लगाए जाते हैं। ऐसी नर्सरी तैयार करने का प्रयोग उन्होंने वर्ष 2013 में बिजनौर में किया था। इसके बाद यह प्रयोग कोरोना संकट के समय खूब काम आया। वह बताते हैं कि तब कई जिलों में वापस लौटे प्रवासी श्रमिकों को कार्य उपलब्ध कराने की चुनौती थी। ज्यादातर जिले कृषि आधारित कार्यों पर टिके हैं। ऐसे में गन्ने का यह प्रयोग काफी काम आया।

कोरोना के वक्त जून, 2020 में कटनी गांव में महिला किसानों से संपर्क किया गया था। इसके बाद 15 जून, 2020 को प्रेरणा नाम के महिला स्वयं सहायता समूह की नींव रखी गई। उनके मुताबिक गन्ने की नर्सरी तैयार कर कमाई करने वाला प्रेरणा महिला समूह इन्हीं में से एक सफल स्वयं सहायता समूह साबित हुआ है।

करनीपुर गांव के जयशंकर पांडेय ने समूह को नर्सरी तैयार करने के लिए एक हेक्टेयर की कृषि भूमि उपलब्ध कराई थी। वह बताते हैं कि जिस वक्त यह समूह शुरू हुआ था उस वक्त गन्ने के अच्छे बीज की कमी थी। फिर सीओएस 13235 के उच्च गुणवत्ता वाले बीज शाहजहांपुर से मंगाए गए थे। तबसे नर्सरी में इन्हीं बीजों का प्रयोग हो रहा है।

वहीं, स्वयं सहायता समूह को शुरुआती मदद के लिए गन्ने के बड काटन वाली मशीन, 6000 पोरट्रे, 6 कुंतल कोकोपिट खाद, 200 बैग वर्मीकंपोस्ट गन्ना अधिकारी ओपी सिंह की तरफ से दिया गया था। 2020 के सितंबर-नवंबर में नर्सरी में कुल 1.59 लाख गन्ने के पौधे तैयार किए गए थे। एक पौधे की कीमत 2.80रुए है। जिससे समूह को किसानों की तरह से प्रति पौधे 1.50 रुपए और सरकार की तरफ से 1.30 रुपए की सब्सिडी मिली थी।

कोरोनाकाल 2020 के शरद ऋतु में किए गए इस पहले प्रयास में खाद व मशीन के सरकारी सहयोग के साथ प्रेरणा समूह की कुल मुनाफा 87,500 रुपए हुआ था। अब नर्सरी को तैयार करने के लिए खाद व वर्मीकंपोस्ट के मामले में स्वयं

फोटो: ओपी सिंह

सहायता समूह पूरी तरह आत्मनिर्भर बन चुका है। प्रेरणा समूह की मंजू देवी बताती हैं कि 2022, अगस्त में समूह की सभी 12 महिलाओं ने आमदनी से गाय खरीदी हैं। अब इन्हीं गाय के गोबर से हम खुद 200 से 300 बैग वर्मीकंपोस्ट तैयार कर रहे हैं। प्रेरणा समूह के साथ इस वक्त कुल 12 महिलाएं काम कर रही हैं। जब जून, 2020 में इसकी नींव रखी गई थी तब इसमें कुल 10 महिलाएं शामिल थीं। समूह की सचिव सायरा बानो बताती हैं कि नर्सरी तैयार करने में कुल 45 दिन लगते हैं। सबसे पहले बड कटर मशीन से गन्ने की गांठे काटी जाती हैं। फिर इन्हें रसायन के घोल में डालकर इनका शोधन किया जाता है। फिर पोरट्रे में एक-एक भाग वर्मीकंपोस्ट, बालू, कोकोपिट भरा जाता है। इनमें गन्ने की गाठों को गहराई में लगा दिया जाता है। फिर इन पोरट्रे को एक दूसरे के ऊपर रखकर पॉलीथीन से ढक दिया जाता है। एक हफ्ते के बाद इन गांठों में कल्ले फूट जाते हैं। बाद में इन्हें किसानों को मांग के अनुरूप 2.80 रुपए में प्रति पौधे की दर से बिक्री कर दिया जाता है।

उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में करनीपुर गांव में गन्ने की नर्सरी में छिड़काव करती स्वयं सहायता समूह की महिला

गन्ना नर्सरी का हिसाब-किताब

तीन साल में करीब 15 लाख गन्ने के पौधे तैयार किए गए

वर्ष	कुल तैयार पौधे	साल में बिक्री रु.	फायदा रु.
2020	1.59 लाख	445,200	87,500
2021	3.96 लाख	1,108,800	217,800
2022	4.00 लाख	1,120,000	220,000
2023	5.00 लाख	1400,000	275,000

प्रेरणा स्वयं सहायता समूह ने 2023 में 5 लाख पौधों का लक्ष्य रखा है। प्रत्याशित बिक्री 14 लाख रु.है

नर्सरी में प्रत्येक पौधे की लागत 2.25 रुपए आती है। प्रत्येक पौधे पर 55 पैसे के हिसाब से बचत होती है। 2.80 रुपए में 1.30 रुपए की सब्सिडी सरकार की तरफ से मिलती है। हालांकि सब्सिडी की मदद 5 लाख पौधों तक ही है। महिला समूह की सदस्य सायरा बानो बताती हैं कि इस काम के चलते उनके जीवन में बड़ा बदलाव आया है। सायरा बानो के मुताबिक समूह में काम करने वाली सभी 12 महिलाएं और उनका परिवार प्रवासी श्रमिक थे। इस समूह से जुड़ने के बाद अब वह और उनका परिवार गांव में ही रोजगार के लिए रुक गए हैं।

सायरा बानो बताती हैं कि हमने समूह से कमाए अपने पैसों से कारपेटिंग के काम के लिए औजार खरीदा है जो उनके पति काम में इस्तेमाल करते हैं। खेती-किसानी के इस प्रयोग से करनीपुर गांव की अन्य महिलाएं भी जुड़ना चाहती हैं। रोजमर्रा के काम के लिए समूह की कुछ महिलाओं ने गांव में दुकानें भी खोली हैं। कभी पुरुष पर आश्रित रहने वाली महिलाएं अब अपने घर के पुरुषों का सहारा बन रही हैं।

प्रेरणा स्वयं सहायता समूह की महिलाओं ने कुल तीन वर्षों (2020-2022 तक) में अब तक कुल 26 लाख रुपए के पौधों की बिक्री की है। समूह को इन तीन वर्षों में कुल 5.25 लाख रुपए का फायदा हुआ है। हर वर्ष नर्सरी तैयार करने के लिए दो सीजन होते हैं। पहला सीजन फरवरी-मार्च और दूसरा सीजन सितंबर से नवंबर। बताती हैं कि प्रेरणा समूह ने 2020 में सितंबर-नवंबर में पहली बार नर्सरी तैयार की। इसके बाद 2021 और 2022 में दोनों सीजन में नर्सरी तैयार हुई।

अब 2023 में यह पहला सीजन है। समूह ने इस वर्ष कुल 5 लाख पौधों को तैयार करने का लक्ष्य रखा है। इससे प्रत्याशित बिक्री 14 लाख रुपए की हो सकती है, जिसका फायदा 2.75 लाख रुपए तक हो सकता है।

प्रेरणा स्वयं सहायता समूह के सदस्यों ने बताया कि सरकार पांच लाख से ज्यादा पौधों पर सब्सिडी नहीं देती है। ऐसे में हम इस लक्ष्य को नहीं पार करेंगे। हालांकि, हमने गांव के अन्य लोगों को नर्सरी के बारे में प्रशिक्षण देना शुरु कर दिया है। साथ ही अब समूह के हर सदस्य के पास एक डेरी हो चुकी है, जिसे हमें और विकसित करना है।

इस समूह को दिशा दिखाने वाले गन्ना उपायुक्त ओपी सिंह बताते हैं कि उत्तर प्रदेश के कई जिलों में इस प्रयोग को अपनाया गया था। कई समूह इस तरह से अपनी आजीविका को बेहतर बना रहे हैं। गोंडा की तरह ही बिजनौर में भी गन्ने की नर्सरी तैयार कर स्वयं सहायता समूह अपनी आजीविका चला रहे हैं।

ग्रामीण आत्मनिर्भरता की मिसाल है सेवा

गांधी जी के ग्रामीण सपने को साकार करती सेवा में पिछले 50 वर्षों में कुल 18 राज्यों में 21 लाख महिलाएं सक्रिय हैं

कलीम सिद्दिकी

छह फरवरी 2023 को अहमदाबाद स्थित देश के पहले स्वयं सहायाता समूह सेवा (सेल्फ एंप्लाइड वूमेन एसोसिएशन) की 50वीं वर्षगांठ का समारोह था। इस समारोह में अमेरिका की पूर्व विदेश मंत्री हिलेरी क्लिंटन मुख्य मेहमान थीं। हिलेरी ने सेवा की नींव डालने वाली दिवंगत इला भट्ट को श्रद्धांजलि दी। इस मौके पर विक्टोरिया गार्डन में बने स्मारक का उद्घाटन किया, जहां 12 अप्रैल, 1972 में सेवा की महिलाओं ने पहली मीटिंग की थी। इन 50 वर्षों में सेवा ने गुजरात की महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए लंबा संघर्ष किया है। दूध क्रांति से लेकर नमक बनाने तक का काम सेवा द्वारा बनाई गई महिला मंडली करती हैं। शुरुआती समय में सेवा शहरी महिलाओं का संगठन था। लेकिन समय के साथ सेवा ने अपना रुख गांव की ओर किया। अब हालात ये हैं कि इस संस्था ने शहरों से अधिक ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने में बड़ा योगदान दिया है।

1970 का साल दुग्ध क्रांति वाला वर्ष था। इस क्रांति का केंद्र गुजरात था जिसने भारत को विश्व में सबसे बड़ा दूध उत्पादक देश बना दिया। सहकारिता के माध्यम से पशुपालकों को डेरियों से जोड़ा गया। उस समय दूध क्रांति के बावजूद महिलाओं की भूमिका गोबर उठाने और दूध दुहने तक ही सीमित थी।

1972 में इलाबेन भट्ट ने महिलाओं को आत्म निर्भर बनाने के लिए सेवा नाम से संस्था शुरू की। लेकिन यह संस्था शहरी महिलाओं तक ही सिमटी हुई थी। सेवा शुरुआत में शहरी क्षेत्रों में बीड़ी,अगरबती, पतंग, गारमेंट काम करने वाली महिलाओं के आर्थिक शोषण और अन्याय के खिलाफ काम करती थीं। 1980 में सेवा ने अपना विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों में किया।

गुजरात में ग्रामीण महिलाएं खेत मजूरी, दूध दूहना और गोबर पाथने का काम करती थीं। लोटा सिस्टम से ग्रामीणों से बिचौलिए दूध खरीदते थे। दूध को बराबर लीटर में नापते नहीं थे। दूध को डेरी तक पुरुष ही पहुंचाते थे। 1980 में सेवा ने महिलाओं की पहली मंडली बनाई थी। सविताबेन पटेल और कई अन्य महिलाओं ने सेवा की पहली मंडली को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। पहली मंडली की वे अब अकेली सदस्य सेवा में कार्यरत हैं।

वर्तमान में 74 वर्षीय सविताबेन पटेल सेवा की मुख्य कार्यकारी अधिकारी का पद संभाल रही हैं। इसी के अंतर्गत हंसीबा शॉप आती है, जिसका वार्षिक टर्नओवर एक करोड़ का है। सविता बेन सेवा की स्थापना के समय से ही अहमदाबाद और गांधीनगर के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला सहकारिता मंडल बनाने में बड़ी भूमिका निभाती रही हैं। सविता बेन बताती हैं, “80 के दशक में महिलाओं की मंडली बनाना एक बड़ा चुनौतीपूर्ण काम था। उस समय महिलाएं बिना अपने घर के पुरुष के मिलती नहीं थीं। दिन में पुरुष खेत या अपने काम पर गया हुआ होता था। महिलाओं में विश्वास की कमी थी। इसलिए हम मंडली बनाने के लिए गांव की महिलाओं से पुरुषों की उपस्थिति में रात में मिलते थे।” वह बताती हैं कि इसी का नतीजा था कि 1980 और 1984 के बीच अहमदाबाद और गांधीनगर जिले के ग्रामीण इलाकों की कई महिलाओं को मंडली में शामिल करने में सफलता मिली। उन्होंने बताया कि 1980 में पहली महिला सहकारी मंडली अहमदाबाद जिले की बावला तहसील के देव धोलेरा गांव में बनाई गई थी।

गांव के नाम से ही मंडली का नाम धोलेरा महिला दूध उत्पादक

फोटो सौजन्य: सेवा स्वयं सहायता समूह

सहकारी मंडली लिमिटेड रखा गया था। शुरुआत में इस मंडली में 50 महिलाएं थीं। बाद में इनकी संख्या में तेजी से बढ़ोतरी हुई। सविता बेन ने बताया कि देव धोलेरा गांव की सफलता के बाद बलदाना, दुमाली, पेथापुर इत्यादि गांव की महिलाओं ने भी इसमें अपनी रुचि दिखाई और इसी का परिणाम था कि इन गांवों में भी सहकारी मंडली का गठन किया गया। यह ध्यान देने वाली बात है कि 1980 से 84 के बीच 15 रजिस्टर्ड महिला सहकारी मंडली बनाने में सफलता मिली।

सविता बेन आगे बताती हैं कि महिलाओं की मंडली तो बनने लगी। लेकिन इसके बाद बहुत सी चुनौतियां सामने आ खड़ी हुईं। क्योंकि मंडली में ऐसी महिलाएं भी शामिल थीं, जिनके पास मवेशी ही नहीं थे, वे अब तक खेतों में मजदूरी किया करती थीं। यही कारण है कि इनके लिए हमने पशु खरीदने के लिए हम राष्ट्रीयकृत बैंकों में गए तो पहले बैंक को शंका होती कि महिलाएं लोन चुका पाएंगी या नहीं। हालांकि हमने 1974 में सेवा बैंक की स्थापना कर चुके थे।

लेकिन सेवा बैंक शहरी बैंक था। उस समय नियमानुसार ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी बैंक लोन नहीं दे सकते थे। इसीलिए लोन के लिए कुछ राष्ट्रीकृत बैंक ही विकल्प थे। हमारी कोशिश से

सेवा के पचास साल पूरा होने के अवसर पर अमेरिका की पूर्व विदेश मंत्री हिलैरी क्लिंटन के साथ समूह की महिलाएं

लोन के माध्यम से पशु खरीदकर खेतों में मजदूरी करने वाली महिलाएं भी मंडली से जुड़ने लगीं तो काम थोड़ा आसान हो गया। उस समय गावों के रास्ते ऐसे नहीं थे कि दूध का ट्रक गांव-गांव तक पहुंच जाए। ट्रक तक दूध पहुंचने के लिए ऊंट गाड़ी और बैल गाड़ी का उपयोग हुआ करता था। दूध नापने का पैमाना लोटा हुआ करता था, जिससे बिचौलिए फायदा उठाकर अधिक दूध ले लिया करते थे। हमने लोटा सिस्टम खत्म कर दूध को लीटर में बेचने का काम शुरू किया।

सविता बेन कहती हैं कि भारत में जातपांत हमेशा एक समस्या रही है। अनुसूचित जाति की महिलाओं के साथ उच्च जाति की महिलाएं काम करना नहीं चाहती थीं। अनुसूचित जाति की जो महिलाएं लोन से पशु खरीद लेती थीं। उस परिवार का बहिष्कार होता था और उन्हें गोबर पाथने तथा मजदूरी का काम नहीं देती थीं। कुछ समय तक ऐसा ही चलता रहा लेकिन फिर मजबूर होकर महिलाओं को बुलाना ही पड़ा। अधिक समय तक दलितों का बहिष्कार नहीं चला। सविता बेन एक घटना को साझा करते हुए कहती हैं कि दुमाली गांव में अनुसूचित जाति और क्षत्रिय जाति की आबादी लगभग बराबर थी। दुमाली गांव महिला दूध उत्पादक सहकारी मंडली की वार्षिक सामान्य मीटिंग थी। मीटिंग की अध्यक्षता अनुसूचित जाति की महिला को दी गई थी। एक अनुसूचित जाति महिला की अध्यक्षता से नाराज क्षत्रिय महिलाओं ने मीटिंग का बहिष्कार कर दिया, जिससे मंडली टूटने का खतरा पैदा हो गया लेकिन कुछ ही दिनों में सभी महिलाओं ने संगठन की ताकत को समझ लिया और एक साथ काम करने लगीं। सेवा की मंडली ने जब अपने पैर दूध के कारोबार में जमा लिए तो मंडली ने इसके बाद घी, छाछ, कैटल फीड तथा अन्य कृषि उत्पादों पर भी काम शुरू किया। इस काम में भी मंडली को आशातीत सफलता मिली।

सेवा की महासचिव ज्योति बेन मैकवान बताती हैं, "सेवा द्वारा जो भी मंडली बनाई गई है, सभी मंडली पूर्णतः महिला मंडली है। मंडली का संचालन पूरी तरह से महिलाओं के हाथ में ही होता है। मंडली द्वारा कृषि उत्पादों की खरीद फरोख्त के लिए सेवा द्वारा कंपनीज एक्ट के तहत रूडी मल्टी ट्रेडिंग कंपनी स्थापित की गई है, जिसका वार्षिक टर्न ओवर लगभग 25 करोड़ रुपए का है। अहमदाबाद, गांधीनगर और पाटन जिले में 60 महिला दूध उत्पादक सहकारी मंडली है। सबसे बड़ी मंडली गांधीनगर जिले की पेथापुर की मंडली है, जिसका वार्षिक टर्नओवर 3 करोड़ रुपए के ऊपर है।" ग्रामीण क्षेत्रों की महिला मंडली जब अपने पैरों पर खड़ी होने लगी तो उन्हीं के बीच 20-25 महिलाओं की बचत मंडली बनाई गई। ताकि महिलाओं के भविष्य के लिए कुछ बचत हो सके। महिलाओं को सेवा बचत बैंक के साथ जोड़कर उनकी बचत को निवेश करवाए गए। सेवा बैंक हर वर्ष निवेशकों को डिविडेंड भी देता है। सेवा के अंतर्गत 4,000 स्वयं सहायता समूह, 110 सहकारी मंडली, 15 इकोनॉमिक फेडरेशन और 3 कंपनियां हैं। सेवा की सीनियर कोऑर्डिनेटर स्मिता भटनागर मंडलियों को ट्रेनिंग देती है। स्मिता बेन बताती हैं, "18 राज्यों में सेवा का अंब्रेला नेटवर्क है। इसमें 21 लाख महिलाएं जुड़ी हुई हैं।"

A Down To Earth ANNUAL

STATE OF INDIA'S ENVIRONMENT 2023

PRICE
~~₹800(US $60)~~
₹500 (US $50)

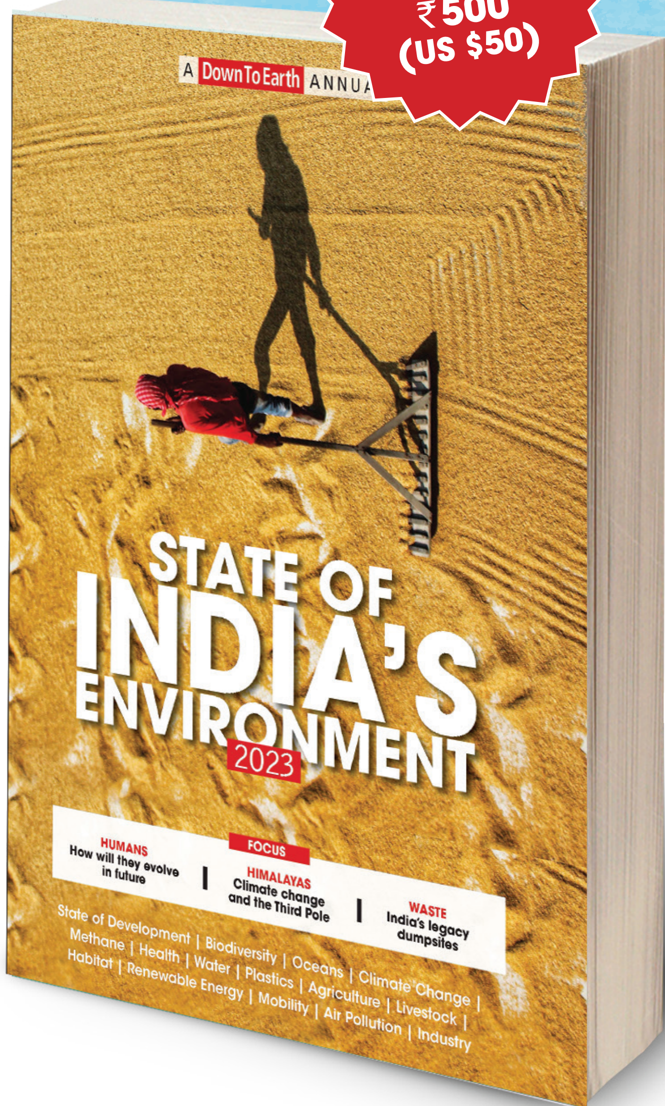

State of India's Environment 2023 is the country's most definitive and trusted publication on environment-related events and developments of the year. Published by the Centre for Science and Environment, and *Down To Earth*, this annual publication is a must-have for individuals and organisations interested in the environmental sector.

Backed by four decades of research and ground reportage, as well as new data, State of India's Environment 2023 is the 10th edition of this annual publication, and focuses on:

State of Development | Biodiversity | Oceans | Climate Change | Methane | Health | Water | Plastics | Agriculture | Livestock | Habitat | Renewable Energy | Mobility | Air Pollution | Industry

The publication also offers analysis of the development in states through data and graphics. The volume comprises essays by researchers, academics and journalists on subjects, such as the impact of climate change on the Himalayas, future of human evolution and India's legacy dumpsites.

YOU CAN RESERVE YOUR COPY NOW !!!

Please place your order online by visiting us at **https://csestore.cse.org.in**

scan the QR code here

You can also mail your order along with a cheque for the required amount in favour of "Society for Environmental Communications", to

Society for Environmental Communications
41, Tughlakabad Institutional Area, New Delhi - 110062

In case of any query, write to T R Ramachandran at: rchandran@cseindia.org

भूकंप के जख्म | योगेन्द्र आनंद

नोट: यदि आप इस पेंटिंग का प्रिंट चाहते हैं तो editor@downtoearth.org.in पर संपर्क करें। इससे प्राप्त सहयोग राशि स्वतंत्र पत्रकारिता पर खर्च होगी।

बिंदुओं से बनती आदिवासी संस्कृति की जीवन रेखा

जंगल और आदिवासी संस्कृति की प्रतिनिधि तस्वीर है मध्य प्रदेश का झाबुआ जिला। आदिवासी संस्कृति में अहम होती है वहां की चित्रकला। भील चित्रकारी आदिवासी कला-संस्कृति का वह अभिन्न हिस्सा है जो आज देश-दुनिया में जानी जाती है। आदिवासी समुदाय मिट्टी के घर की दीवारों को इससे सजाते हैं। इसलिए इस पेंटिंग के कथ्य में पूरी आदिवासी जीवनशैली ही उकेरी होती है। आदिवासी समुदाय के कुछ चित्रकार इस शैली को खत्म होने से बचाने के लिए पूरी दुनिया में इस कला को लोगों के बीच बांट रहे हैं। पहले प्राकृतिक रंगों का कैनवास मिट्टी की दीवारें होती थीं तो अब यह कागज और अन्य वस्तुओं पर उकेरा जा रहा है। शांता भूरिया कलाकार हैं जो भील पेंटिंग की परंपरा का आधुनिक उत्पादों के साथ कदमताल करा उसे बचाने को युद्धरत हैं। जंगल के घरों की दीवारों से निकल कर यह कला शहरी कद्रदानों की बैठकी तक पहुंच गई है। शांता भूरिया समझती हैं कि कोई कला तभी जीवित रह सकती है जब उसे नई पीढ़ी तक पहुंचाया जाए। आदिवासी खान-पान हो या चित्रकारी इनके कथ्य में पर्यावरण जागरुकता की कदमताल होती ही है। भील चित्रकारी के लिए समर्पित कलाकार **शांता भूरिया** से **अनिल अश्विनी शर्मा** की खास बातचीत

आपकी भील पेंटिंग की यात्रा कब शुरू हुई ?

कहने के लिए तो मेरी यह कला यात्रा बचपन में शुरू हो गई थी। गांव के घरों की दीवारों पर मेरी मां इसे बनाती थी। उन्हें चित्र उकेरते देखना ही मेरे लिए इस कला का पहला स्कूल था। थोड़ी बड़ी होने पर इसकी बारीकियां सीखी।

आपकी भील चित्रकला की क्या खासियत है?

गौंड चित्रकला में रेखाओं का महत्व होता है, वहीं भील चित्रकारी में बिंदी का बहुत अधिक महत्व होता है। चित्रकारी का ज्यादातर हिस्सा बिंदी के माध्यम से ही उकेरा जाता है। कुल

मिलाकर आप कह सकते हैं कि भील चित्रकारी बिंदुओं पर ही आधारित है।

भील चित्रकारी की विरासत को बचाने के लिए आपके क्या प्रयास हैं?

मैं चाहती हूं कि मेरे बाद भी आदिवासियों की यह भील चित्रकारी बची रहे। इसलिए मैंने पिछले 15 सालों में दर्जनों कार्यशाला कर युवाओं को इसे सीखने के लिए न केवल प्रेरित किया बल्कि उनको लगातार इस पेंटिंग की बारीकियां सिखाने की कोशिश में लगी रहती हूं। हमारी कोशिश है कि हम ज्यादा से ज्यादा लोगों को भील चित्रकारी सिखाएं क्योंकि कोई भी एक बार इसे सीख लेगा तो उसकी आजीविका का साधन अवश्य बन जाएगी। हमारी कार्यशाला में जो सीखने आते हैं, उनकी लगन देखकर हमेशा अच्छा लगता है। इन कार्यशालाओं में युवा बढ़-चढ़ कर भागीदारी करते हैं। कार्यशाला खत्म होने के बाद भी हमसे लगातार संपर्क बनाकर रखते हैं। चित्रकारी करना तो उत्साहजनक है ही, इस कला को दूसरों को हस्तांतरित करने का भी अपना सुख है। मैं इस सुख को भरपूर जी रही हूं। कला के किसी भी रूप को संरक्षित करने के लिए ज्ञान का आदान-प्रदान अहम है। इसलिए मैं सेंधवा वन प्रभाग द्वारा आयोजित प्रशिक्षण सत्रों में लोगों को लगातार कला सिखाने के लिए तैयार हो गई। यह युवाओं को इस कला की ओर आकर्षित करने का प्रयास था। आज की पीढ़ी मोबाइल और इंटरनेट से चिपकी हुई है। ज्यातार युवाओं में कलात्मक स्थिरता व संवेदनशीलता की कमी होती है। लेकिन मैं यह जरूर कहना चाहूंगी कि 15 से 40 वर्ष की आयु के प्रतिभागियों ने मुझसे भील पिथौरा कला सीखने में जो रुचि दिखाई, उससे मैं अभिभूत हूं। इस तरह के प्रयास ही कला को जीवित रखेंगे।

भील चित्रकारी में आपका पसंदीदा कथ्य क्या रहता है ?

शुरू में तो मैंने पेंसिल से ड्राइंग करते हुए अपनी रचनात्मकता को पूरी तरह से मुक्त होने दिया। इसके बाद मैंने इस पेंटिंग की असली शैली को अपनाया यानी चित्रों में छोटे बिंदुओं का भरपूर प्रयोग करना। बिंदुओं का समुच्चय ही कथ्य तैयार करता है जो मेरी आस-पास से हासिल संवेदनाओं से जुड़ा होता है। मेरा मुख्य कथ्य तो प्रकृति ही है। मैं जब भी प्रकृति को कैनवास पर जीवंत करती हूं तो अपनी कल्पना में आए मोर को अलग तरह से चित्रित करने का प्रयास रहता है। मोर तो सबने देखा होता है। मेरा मन-मयूर कल्पनाशील होकर अलग ही मोर रचता है। हालांकि, मैंने अपनी मां से काफी कुछ सीखा है, फिर भी मेरे चित्रों पर मेरे देखे-सुने महसूसे का सबसे ज्यादा असर होता है।

आपकी चित्रकारी के साथ पारिवारिक सहयोग कितना रहता है ?

चार बच्चों की देखभाल की जिम्मेदारी के साथ कलात्मक कल्पना की उड़ान भरनी होती है। जब वे स्कूल जाते हैं तब मैं दोपहर में पेंटिंग करती हूं। लेकिन मेरा परिवार, खासकर मेरे पति, मेरे काम में सहयोग कर रहे हैं। मेरी पेंटिंग दिल्ली और बेंगलुरु सहित कई शहरों में प्रदर्शित की गई है। अभी बड़ी संख्या में लोग मेरी पेंटिंग खरीदना चाहते हैं। उन को कभी निराश नहीं करती हूं।

आपकी भील चित्रकारी में पर्यावरण जागरुकता को लेकर भी संदेश रहता है। क्या इसे लेकर खास सजगता है ?

देखिए चमकीले रंग मेरे चित्रों को हमेशा से विशिष्ट बनाते हैं, विशेष रूप से पेड़ और जानवर। इसे आप गहराई से समझें तो यह पर्यावरण जागरुकता फैलाने का सबसे अच्छा तरीका भी है।

आपकी भील चित्रकारी आदिवासी घरों से निकल कर हर जगह पहुंच चुकी है। अब पूरा देश इसे जानता है। आप इसे कैसे देखती हैं ?

भील चित्रकारी तो झाबुआ संस्कृति की जीवनरेखा थी, जहां मैं पैदा हुई थी। मैंने यह कला अपनी मां भूरी बाई से सीखी। उन्हें इस कला की सेवा के लिए पद्मश्री से सम्मानित किया गया। मेरी मां के समय में त्योहारों और शादियों के दौरान ग्रामीण घरों की मिट्टी की दीवारों पर चित्रकारी की जाती थी। चिकनाई के लिए पहले गाय का गोबर उपयोग में लाया जाता था। साथ में कुचले हुए पत्तों और हल्दी के पेस्ट का उपयोग करके हम अपना पेंट बनाया करते थे। प्राकृतिक रंग हमेशा से मिट्टी की दीवारों को एक अनूठा आकर्षण प्रदान करते हैं। अब ऐसी मिट्टी की दीवारें मिलनी मुश्किल है। स्वाभाविक रूप से इसके कारण पेंटिंग लगभग गायब होने लगी। लेकिन यह अच्छी बात है कि इस कला ने कैनवास और कागज पर अपनी कला को उकेरने का रास्ता खोज लिया, वरना अब तक यह गायब हो चुकी होती। वर्तमान में मुट्ठी भर चित्रकार ही इस अनूठी कला को जीवित रखे हुए हैं। आज मेरे हाथ ब्रश पकड़ते हैं, वे कभी शारीरिक श्रम करते थे।

आत्मनिर्भर गांव के सहेजे अक्षर

जलाधिकार की अनूठी हिस्सेदारी की कहानी कहने वाली यह किताब अपने आप में एक दस्तावेज है

अनिल अश्विनी शर्मा

"**जलाशय पूरे** गांव के लोगों का होगा, यहां के हर परिवार की उसमें हिस्सेदारी होगी। चाहे वे जमीन के मालिक हों या बेजमीन। हर परिवार का बराबर जलाधिकार होगा। जिन परिवारों को सिंचाई के पानी की जरूरत नहीं है वे अपने जलाधिकार को अपने पड़ोसी जमीन मालिकों को बेच सकते हैं।" पानी की ऐसी अनूठी हिस्सेदारी की कहानी शुरू होती है हरियाणा के पंचकुला जिले के सुक्खो माजरी गांव से। परशु राम मिश्रा (पीआर मिश्रा) ने इस गांव में सामुदायिकता के तहत सिंचाई के लिए दो जलाशयों का निर्माण करवाया। इस गांव के 83 परिवारों में से आठ के पास खेती की जमीन नहीं थी तो उनके जलाधिकार

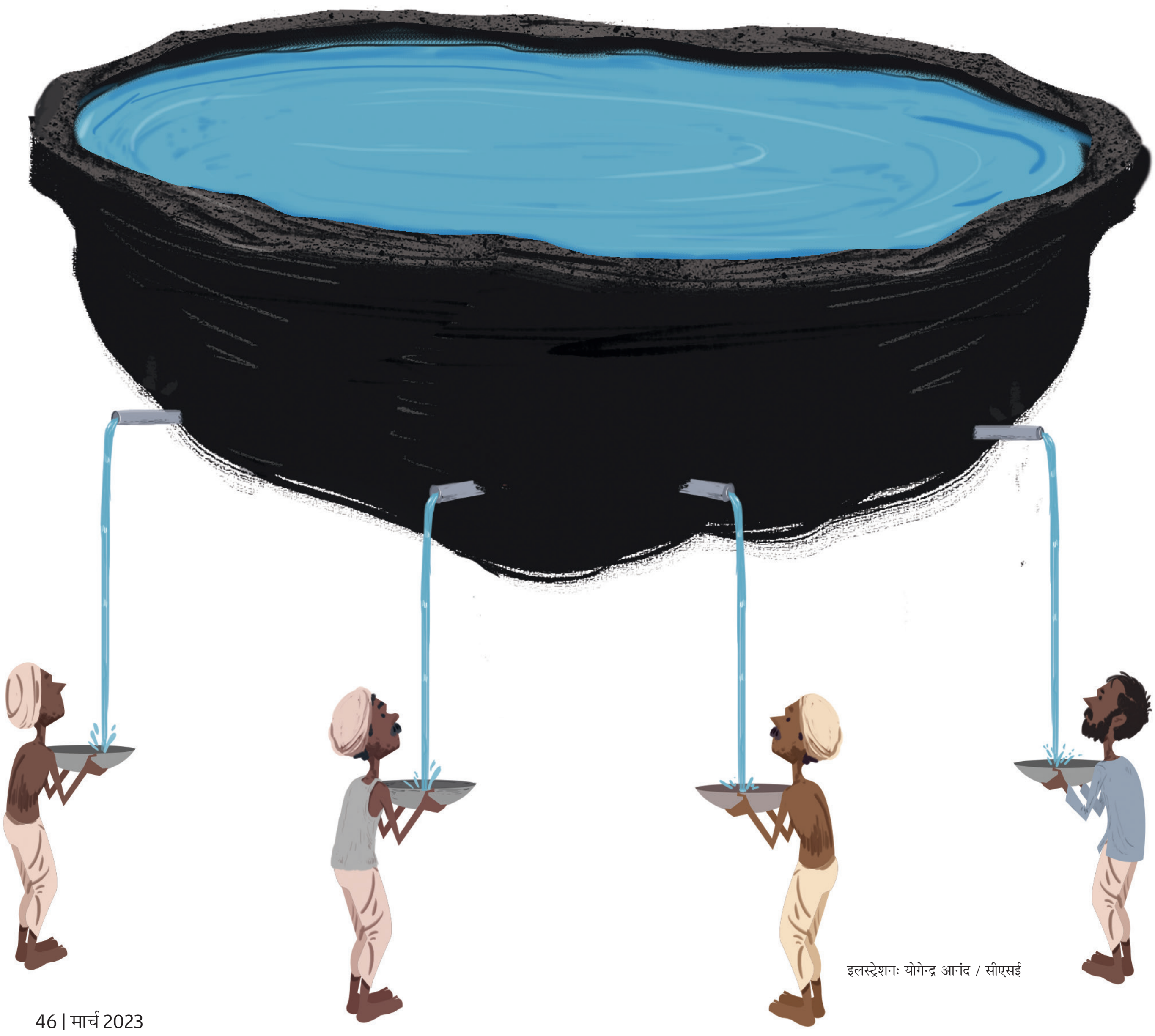

इलस्ट्रेशनः योगेन्द्र आनंद / सीएसई

की रक्षा के लिए उन्हें इसे पड़ोसी जरूरतमंद को बेचने की व्यवस्था की गई। "साइक्लिक सिस्टम ऑफ डेवलपमेंट: ए जर्नी विद परशु राम मिश्रा" एक ऐसी किताब है जिसे शोधविज्ञानी गोपाल के कादेकोदी ने उस अगली पीढ़ी के लिए लिखी और संपादित की है जो उस व्यवस्था को असंभव मानने की गलती न करें, जिसे उनके पुरखे संभव कर चुके हैं। आत्मिनर्भर गांव का जो सपना पूरा हो चुका है उसे मिटने से कैसे बचाया जा सकता है।

सुक्खो माजरी पंचकूला जिले में हरियाणा के नक्शे पर एक ऐसा गांव है जहां अर्थशास्त्र का अभिनव प्रयोग किया गया। ऐसा प्रयोग जिसमें प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन वहां के स्थानीय लोगों ने किया। इसी गांव में चक्रीय विकास प्रणाली का जन्म हुआ। यह प्रणाली मानती है कि प्राकृतिक संसाधनों का हक जनता के पास है। आगे चल कर इस प्रणाली का प्रयोग दक्षिण बिहार के तीस गांवों में किया गया जो वर्तमान में झारखंड का हिस्सा हैं। इसी चक्रीय विकास प्रणाली को समझने के लिए सबसे पहले चंडीगढ़ के "सेंट्रल सॉयल एंड वाटर कंजरवेशन रिसर्च एंड ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट" पहुंचते हैं गोपाल के कादेकोडी। इस केंद्र का जिम्मा संभाल रहे थे पीआर मिश्रा।

"आत्मसमर्पण से बेहतर है आत्मनिर्भरता"। गोपाल के कादेकोदी जब पीआर मिश्रा से मिलने उनके चंडीगढ़ के दफ्तर में पहुंचे तो दीवार पर लिखे इस वाक्य पर नजर पड़ी। उस वक्त कादेकोदी को अंदाजा नहीं था कि इस एक वाक्य को समझने में वे न सिर्फ अपने जीवन का अहम हिस्सा गुजार देंगे बल्कि इस पर किताब भी लिखेंगे ताकि आने वाली पीढ़ी संपदा प्रबंधन के इस सहज और सरल अर्थशास्त्र को समझ ले। यह अर्थशास्त्र है शून्य के गणित का। जो, जितना और जिनके पास है उसे अपनी जरूरतों के हिसाब से प्रबंधन करने दो। पानी की मिल्कियत जलाशय का निर्माण करने वाले की हो तो पेड़ के फल का मालिकाना हक उन्हें मिले जिन्होंने बीज बोए और पेड़ों की देखभाल की।

"अगर लोग पानी की अपनी जरूरतों का खुद ही प्रबंधन कर लेंगे तो आपको इसमें कोई आपत्ति है?" पीआर मिश्रा के इस सवाल का कादेकोदी के पास सिर्फ किताबी जवाब था कि जल जैसे खुले संसाधन का प्रबंधन राज्य के पास हो तो यही व्यवस्था सबसे फायदेमंद हो सकती है। इस पर पीआर मिश्रा ने कहा, "आप लोगों ने भारत के लोगों के बजाय सिर्फ विदेशी उपदेशकों से सीखा है। अपने गांव जाइए और वहां के लोगों से सीख-समझ कर वापस आइए।" कादेकोदी उस व्यवस्था के संस्थापक के पास खड़े थे जिसका संदेश

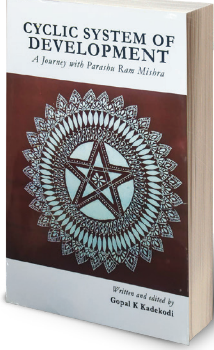

साइक्लिक सिस्टम आफ डेवलपमेंट: ए जर्नी विद परशु राम मिश्रा

लेखक व संपादक: गोपाल के कादेकोदी

सीरियल्स पब्लिकेशंस (प्रा) लिमिटेड

93 पृष्ठ | 295 रुपए

था-प्राकृतिक संसाधनों के मालिक लोग हैं न कि सरकार। जल, जंगल हो या जानवरों के चरने की जमीन, सरकारों को सिर्फ अभिभावक होना चाहिए न कि मालिक। आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान और आत्मपूर्णता के तीन स्तरों से चक्रीय विकास प्रणाली द्वारा किस तरह लोग भूमि व जल-प्रबंधन कर गरिमामय जीवन जी सकते हैं इसके जीवंत किरदार इस किताब में हैं।

"पीआर मिश्रा को श्रद्धांजलि" अध्याय में सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरमेंट (सीएसई) के संस्थापक अगुआ अनिल अग्रवाल को उद्धृत किया गया है। अनिल अग्रवाल अपना संस्मरण साझा करते हुए कहते हैं कि मैं पीआर मिश्रा के काम को समझने के लिए गांव गया था। वहां जेठू राम (पीआर मिश्रा की प्रणाली के पहले कार्यकर्ता) ने अनिल अग्रवाल से पूछा "आपने इस जलाशय में क्या देखा?" अनिल अग्रवाल ने जवाब दिया-"पानी" । जेठू राम ने कहा- "नहीं, मैं इसमें दूध देखता हूं। यह पानी हमें शहद और दूध देता है।" जेठू राम किसी पैगंबर की तरह भविष्यवाणी कर रहे थे जो आगे चल कर सच साबित हुई। सुक्खो माजरी गांव में पेड़ों का घनत्व जो 1976 में 13 प्रति हेक्टेयर था, 1992 में 1,272 प्रति हेक्टेयर हो गया। दूध का उत्पादन बढ़ा, अतिरिक्त घास को गांववालों ने बेचना शुरू किया। वहां अब भूख नहीं संपन्नता थी। 1989 में सुक्खो माजरी भारत का पहला आयकर देनेवाला गांव बन गया।

इसी किताब के सातवें अध्याय में रिचर्ड महापात्रा का वह लेख है जिसमें वे सुक्खो माजरी गांव की सफलता का मूल्यांकन करने पहुंचते हैं। गांव के 1,500 गुर्जर परिवार जेठू राम और मिश्रा जी की चक्रीय प्रणाली के महत्व को समझ चुके थे। रिचर्ड बताते हैं कि कैसे दो दशक के प्रयोग के दौरान सुक्खो मारजी एक आत्मनिर्भर गांव बन चुका है। इसके साथ ही रिचर्ड सरकार के उन कदमों का भी उल्लेख करते हैं जो इस तरह की जनपरियोजना को खत्म करने पर उतारू हैं।

25 मार्च 2001 को पीआर मिश्रा का निधन हो गया था। मिश्रा जी हमेशा इसी सोच में रहते थे कि ऊर्जा का संरक्षण किस तरह करना चाहिए? पीआर मिश्रा शून्य के गणित में यकीन रखते थे। उपेक्षित परती जमीनों के अधिकतम इस्तेमाल से उस भूगोल का जनकल्याण करना।

"साइक्लिक सिस्टम आफ डेवलपमेंट: ए जर्नी विद परशु राम मिश्रा" के लेखक व संपादक गोपाल के कादेकोदी को पीआर मिश्रा के साथ 25 सालों तक काम करने का अनुभव हासिल हुआ। यह किताब मिश्रा की जीवनकथा नहीं कर्मकथा है। पीआर मिश्रा का निजी व्यक्तित्व और समाज को लेकर उनकी मिशनरी सोच मिलकर एक ऐसी जिम्मेदार व्यवस्था तैयारी करती है जहां लोग प्रकृति के जरिए प्राकृतिक रूप से ही आत्मनिर्भर हो सकें। इस किताब के जरिए आनेवाली पीढ़ी के लिए "चक्रीय विकास प्रणाली" का दस्तावेजीकरण कर दिया गया है। आने वाली कल की पीढ़ी समझ सके कि बीते हुए कल में ऐसी प्रणाली का सफल प्रयोग कर लिया गया था जो जमीन और जन के बीच सरकारों की सिर्फ संरक्षक की ही भूमिका मानती है। यह जमीन को लेकर ऐसा प्रयोग था जिसमें कोई मालिक-मजदूर नहीं बल्कि शिष्य और शिक्षक का रिश्ता तैयार किया गया था। पहले आप एक विद्यार्थी की तरह इस प्रणाली को समझें और फिर एक शिक्षक बन कर आगे के विद्यार्थियों की समझ विकसित करें।

महात्मा गांधी के आत्मनिर्भर गांवों का "हिंद स्वराज" आज भी दूर का सपना है। लेखक ने पीआर मिश्रा के कामों का इस तरह संपादन किया है कि लोग क्रमानुसार समझ सकें कि आत्मनिर्भर गांवों का सपना पूरा हो चुका है और इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। भारत के गांवों के भरण-पोषण का ढांचा किस तरह गांव खुद तैयार कर सकते हैं, इस संदेश को यह किताब सफलतापूर्वक देती है। पर्यावण विज्ञान से लेकर समाज व अर्थशास्त्र की सभी शाखाओं के विद्यार्थियों के लिए यह एक जरूरी सी किताब है जो कहती है भारत के गांव सीखने की किताब व विद्यालय हैं। गांवों पर बाहरी विद्वानों की बनाई व्यवस्था थोपने के बजाए अपने विकास का पाठ्यक्रम उन्हें खुद तैयार करने दीजिए।

टिकाऊ पर्यटन की चुनौती

अब तक विकसित किए गए पर्यटक स्थल नगरपालिका की सीमा के साथ ही साथ संवहन क्षमता सीमा या लोगों और बुनियादी ढांचे के अधिकतम भार से पार चले गए हैं

जगदीश चंद्र कुनियाल

समृद्ध जैव विविधता, ग्लेशियर, जल संसाधन और सांस्कृतिक विविधता के बूते भारत का हिमालयी क्षेत्र दुनियाभर के पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। सरकारी थिंक टैंक नीति आयोग के अनुसार, 2018 तक पश्चिम बंगाल में पर्यटकों की संख्या सबसे ज्यादा रही। जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, असम, मेघालय, सिक्किम, और त्रिपुरा जैसे उत्तर-पश्चिमी और मध्य हिमालयी राज्य और केंद्र शासित प्रदेशों में भी बड़ी संख्या में सैलानी घूमने पहुंचे। इनकी तुलना में अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मिजोरम, और नागालैंड जाने वाले पर्यटकों की संख्या कम रही।

हिमालयी क्षेत्र में धार्मिक तीर्थयात्राओं के साथ ही मनोरंजक और रोमांचक गतिविधियों के लिए उपयुक्त माहौल मिलता है। इन राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में रहने वाले लोगों के लिए पर्यटन आय और आजीविका का एक महत्वपूर्ण स्रोत भी है। जमीनी स्तर से लेकर शीर्ष तक ये गतिविधियां टिकाऊ तरीके से हों, यह सुनिश्चित करना मुश्किल तो नहीं लेकिन चुनौती भरा काम जरूर है। पिछले एक साल से केंद्र सरकार हिमालयी क्षेत्र में टिकाऊ पर्यटन को बढ़ावा देने पर जोर दे रही है।

जून 2022 में केंद्रीय पर्यटन मंत्रालय ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम और रिस्पॉन्सिबल टूरिज्म

भारत में पहाड़ों पर स्थित धार्मिक स्थलों पर बड़ी संख्या में तीर्थयात्री आते हैं और बड़ी मात्रा में ठोस कचरा छोड़ जाते हैं

सोसायटी ऑफ इंडिया के साथ एक शिखर सम्मेलन आयोजित किया। इसमें टिकाऊ पर्यटन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर रणनीति की शुरुआत की गई। इसका उद्देश्य पर्यावरणीय, आर्थिक, और सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिरता, जैव विविधता की सुरक्षा, क्षमता निर्माण और बेहतर गवर्नेंस को बढ़ावा देना है।

बेहतर परिवहन सुविधाओं के जरिए वायु प्रदूषण में कमी लाने, ऐतिहासिक धरोहरों के संरक्षण और खुली जगहों के साथ ग्रीन इंफ्रास्ट्रक्चर में अधिक निवेश की जरूरत भी इस दौरान महसूस की गई। इसके साथ ही जुलाई में स्वदेश दर्शन 2.0 के लिए दिशा-निर्देश भी जारी किए गए। इस योजना का उद्देश्य देश में थीम-आधारित पर्यटक सर्किट का विकास करना है। इसमें हिमालयी क्षेत्र की विभिन्न परियोजनाओं और प्रस्तावों में टिकाऊ और जिम्मेदार पर्यटन परियोजनाओं को स्थापित करने का विजन भी शामिल है।

हालांकि, कुछ चुनौतियों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। हिमालय में कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जो बड़े पैमाने पर पर्यटन के कारण काफी परेशानियों का सामना करते हैं, वहीं कुछ अन्य अपनी पर्यटन क्षमता का अभी तक पूरा इस्तेमाल नहीं कर पा रहे हैं। यहां तक कि राज्यों के भीतर भी क्षेत्रीय विषमताएं हैं। कुछ सर्किट में पर्यटकों की संख्या बहुत बढ़ रही है।

इन सब में मौसम भी अहम भूमिका निभाता है। प्रमुख पर्यटन गतिविधियां साल में केवल कुछ महीनों तक ही सीमित हैं। जब गर्मियां चरम पर होती हैं, खासकर अप्रैल से जून तक या फिर बर्फबारी के दौरान दिसंबर से फरवरी के अंतिम सप्ताह तक, या कभी-कभी मध्य मार्च तक ही ये इलाके पर्यटकों से गुलजार रहते हैं। सर्दियों की तुलना में गर्मियों के दौरान अधिक सैलानी देखे जाते हैं, जिसकी वजह से उन महीनों के दौरान मौजूदा बुनियादी ढांचे और स्थानीय संसाधनों पर इंसानों का दबाव बढ़ जाता है।

एक छोटी सी जगह पर अचानक कुछ समय के लिए बढ़ गई भीड़ के कई असर दिखाई देते हैं। जैसे ठोस कचरे का अधिक उत्पादन, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण और वनों की कटाई बढ़ जाती है। सर्दियों में लोगों और वाहनों की भीड़ और उनसे जुड़ी गतिविधियों के कारण जलवायु परिवर्तन तेज होता है। इससे बर्फबारी और बर्फ पिघलने के पैटर्न में बदलाव आता है। इन सभी दबावों के परिणामस्वरूप हिमालयी क्षेत्र के स्थानीय समुदायों और संसाधनों पर भारी संकट मंडरा रहा है।

पर्यटन का दबाव कम करने की जरूरत

बेतहाशा बढ़ते पर्यटन के खतरों को कम करने का एक तरीका लोगों में संरक्षण की भावना पैदा करना है। पारिस्थितिक पर्यटन (जिसमें रेस्पॉन्सिबल ट्रैवल और स्थानीय पर्यावरण और पारिस्थितिक तंत्र की सुरक्षा शामिल है), वैकल्पिक पर्यटन या हरित पर्यटन को बढ़ावा देकर क्षेत्रीय असमानताओं को कम किया जा सकता है। इसमें किसी भी स्थान पर उपलब्ध संसाधनों के आधार पर पर्यटन गतिविधियों का विकेंद्रीकरण शामिल है। यहां 2 बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए- पहला, किसी क्षेत्र में अब तक विकसित किए गए पर्यटक स्थल नगरपालिका की सीमा के साथ ही साथ संवहन क्षमता सीमा या लोगों और बुनियादी ढांचे के अधिकतम भार से भी पार चले गए हैं। दूसरा, ईकोटूरिज्म गतिविधियों के लिए काफी संभावनाओं वाले उत्तरपूर्वी राज्यों में पर्यटन प्रणाली अभी भी विकसित की जानी है। इन दो बिंदुओं पर ध्यान देने से स्थानीय पर्यटन क्षमता को समझने में मदद मिलेगी।

इसके अलावा, छोटे इलाकों में विकास कार्यों से पहले संवहन क्षमता का आकलन करने से पर्यावरण पर दबाव कम करने, प्रदूषण कम करने, प्राचीन पारिस्थितिकी को बनाए रखने और निवासियों और पर्यटकों, दोनों के जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने में काफी मदद मिलेगी। इतना ही नहीं, बड़े पैमाने पर पर्यटन में कमी के लिए न केवल राज्यों और पर्यटन स्थलों के भीतर मौजूदा सुविधाओं का विकेंद्रीकरण करना महत्वपूर्ण है, बल्कि नए स्थलों का विकास भी उतना ही जरूरी है। इससे दूर-दराज के क्षेत्रों को भी मुख्यधारा से जोड़ा जा सकेगा और प्रवासन को कम करते हुए निवासियों के लिए आजीविका और आय के अवसर प्रदान किए जा सकेंगे। साथ ही, पर्यटक भी इन इन दूरस्थ क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर अप्रयुक्त पर्यावरण का लाभ उठाने में भी सक्षम होंगे। लेकिन विकास के लिए यहां भी पहले संवहन क्षमता आकलन और पर्यटकों के लिए एक स्थायी सीमा का निर्धारण बहुत जरूरी है।

प्रदूषण से मुकाबला

पर्यटन स्थलों और उनके आसपास ठोस कचरे का अंधाधुंध उत्पादन और निस्तारण हिमालयी क्षेत्रों में बड़ी समस्या बनता जा रहा है। गोविंद बल्लभ पंत नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन एनवॉयरनमेंट, अल्मोड़ के अध्ययन से पता चलता है कि पहाड़ी स्थानों में कुल कचरे का 65-80 प्रतिशत बायोडिग्रेडेबल ठोस कचरा होता है, जबकि गैर-बायोडिग्रेडेबल अपशिष्ट व्यापक रूप से ट्रैकिंग और एक्स्पिडिशन समिट में पाया जाता है। इसलिए पहाड़ी स्थानों पर माइक्रोबियल बायो कंपोस्टिंग को अमल में लाया जा सकता है। यह बायोडिग्रेडेबल कचरे के साथ नियंत्रित स्थितियों (255 डिग्री सेल्सियस) में एरोबिक प्रक्रिया के तहत कचरे के प्राकृतिक विघटन और अपघटन का सबसे अच्छा

पर्यटन स्थलों और उनके आसपास ठोस कचरे का अंधाधुंध उत्पादन और निस्तारण हिमालय के क्षेत्रों में बड़ी समस्या बनता जा रहा है

पिछले एक दशक से हिमालय पर ट्रेकिंग और कैम्पिंग गतिविधियां तेजी से बढ़ी हैं। इसकी वजह से गैर-बायोडिग्रेडेबल अपशिष्ट व्यापक रूप से पहाड़ों के ईकोसिस्टम को बिगाड़ रहा है

तरीका है। जिस प्रकार हम बैक्टीरिया (लैक्टोबैसिलस) के इस्तेमाल से दूध को फर्मेन्ट करके दही और योगर्ट प्राप्त करते हैं, वैसे ही मध्यम से ठंडी परिस्थितियों में बढ़ने वाले साइकोफिलिक और मेसोफिलिक बैक्टीरिया के इस्तेमाल से बायोडिग्रेडेबल कचरे को जैव खाद में तोड़ सकते हैं। 500 किलो कच्चे माल से 267 किलो बायो कम्पोस्ट प्राप्त किया जा सकता है। जहां गर्मियों में अंतिम उत्पाद 555 दिनों में प्राप्त किया जा सकता है, वहीं सर्दियों में इसी प्रक्रिया में 655 दिन लगते हैं।

दूसरी ओर, जिन क्षेत्रों में गाड़ियां ज्यादा चलती हैं, वहां परिवेशी हवा से अधिक प्रदूषण होता है। इसमें पीएम 10, पीएम 2.5, पीएम 1.0 (1 माइक्रोन से नीचे), ब्लैक कार्बन (0.5 माइक्रोन) और अल्ट्रा-फाइन एरोसोल के साथ-साथ सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रोजन डाईऑक्साइड और सरफेस ओजोन जैसे गैसीय प्रदूषक शामिल हो सकते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि टूरिस्ट सीजन के दौरान इन प्रदूषकों की मात्रा निर्धारित अधिकतम सीमा से क गुना अधिक बढ़ जाती है। जबकि बाकी समय ये प्रदूषक सीमा के भीतर रहते हैं। इंडो-गैंगेटिक मैदान, थार मरुस्थल, पश्चिम एशियाई देश और सहारा मरुस्थल कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जहां से ये प्रदूषक कभी-कभी हिमालय क्षेत्र की तलहटी या ऊंचाई तक चले जाते हैं। ग्लेशियरों पर इनके जमा होने से उनके पिघलने की दर बढ़ जाती है।

इससे निपटने के लिए बंज ओक, रिंग-क्यूप्ड ओक, काफल, उतिष और गिंग्को जैसी स्थानीय वनस्पति प्रजातियों को पर्यटन स्थलों और आसपास के इलाकों में रोपकर ग्रीन बेल्ट या पार्क विकसित किया जा सकता है। इसी तरह, पलाश, नीम, गुलमोहर, और मिश्रित पत्तियों वाले बकैन हवा में शामिल धूल के कणों को काम करने में सहायक होते हैं। साधारण पत्तियों वाले पौधे धूल, धुएं और अन्य प्रदूषकों को कम करने में भी मदद करते हैं। इनमें देवदार, पीपल, बरगद, सागौन, साल, आम, कचनार और कदम्ब जैसे पेड़ भी शामिल हैं।

स्थानीय स्तर पर वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए किए गए अन्य उपायों में सौर, भूतापीय और पवन ऊर्जा जैसे गैर-पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों का उपयोग किया जा सकता है। इलेक्ट्रिक वाहनों के साथ ही जलविद्युत ऊर्जा के लिए जल मिलों (घराट) को शुरू करना भी इसमें मददगार साबित हो सकता है। पाइन नीडल जंगलों और आसपास के पर्यटन स्थलों में प्रचुर मात्रा में पाया जाने वाला कच्चा माल है, जिसका इस्तेमाल आग जलाने में ईंधन की तरह किया जा सकता है। इनका उपयोग जैव ईंधन के विकल्प के तौर पर किया जा सकता है।

सहभागिता बढ़ाने की जरूरत

जब भी कोई सस्टेनेबल अप्रोच अपनाई जाती है, तब ऐसे उपायों के साथ ही स्थानीय समुदायों को भी उसमें शामिल करना चाहिए। इसके लिए सतत और आर्थिक समाधानों को अपनाना होगा। साथ ही लोगों के बीच जागरुकता लाने के लिए कौशल और क्षमता निर्माण कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना होगा। हिमालयी क्षेत्र में सैलानियों, निवासियों, और अन्य हितधारकों के लिए यह जरूरी है कि इन इलाकों की सुविधाओं और संसाधनों का उपयोग करते समय नियमों का ख्याल रखें और अच्छी आदतें सीखें।

समस्याओं के समाधान के लिए ईको-टूरिज्म या विलेज टूरिज्म जैसे उपायों को अपनाना भी बेहतर विकल्प साबित हो सकता है। इसका लाभ भी स्थानीय समुदायों तक पहुंचाए जाने की जरूरत है, ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें।

(लेखक उत्तराखंड के अल्मोड़ा में स्थित गोविंद बल्लभ पंत नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ हिमालयन एनवायरमेंट के सेंटर फॉर एनवॉरनमेंटल असेसमेंट एंड क्लाइमेट चेंज के प्रमुख हैं। लेखक प्रासंगिक सुविधाएं प्रदान करने के लिए संस्था के निदेशक का आभार प्रकट करता है। व्यक्त किए गए सभी विचार लेखक के हैं, इसका उनके संगठन से कोई संबंध नहीं है)

जीपीटी चाट भंडार

"इस चैट-जीपीटी से डर पढ़े-लिखे लोगों को है। हम अशिक्षित भक्त क्यों डरें"

सोरित गुप्तो

अमेरिका के सेन फ्रांसिस्को स्थित पायनियर बिल्डिंग में जश्न का माहौल था। सैम अल्टमैन, एलन मास्क, ग्रेग ब्रोकमान जैसे दिग्गज और ओपनएआई के सारे स्टाफ डीजे की तेज आवाज पर नाच रहे थे।

अचानक किसी ने सैम अल्टमैन से पूछा, " हम सब नाच क्यों रहे है? ?"

सैम ने नाचते हुए जवाब दिया, "अरे बांगड़ू चैट-जीपीटी के लिए हम सब जश्न मना रहे हैं।"

पहले ने पूछा, "यह चैट-जीपीटी क्या होता है?"

एकाएक डीजे बंद हो गया। सभी थिरकते पावों जहां के तहां फ्रीज हो गए।

"इसको चैट-जीपीटी नहीं पता!"

इससे पहले बात आगे बढ़ती, सैम उस व्यक्ति को कंपनी के बोर्ड रूम ले गए, जहां चारों ओर सुपर कम्प्यूटर लगे थे। सैम ने कहा "मानवता अब आर्टिफिशियल लर्निंग के अमृतकाल में प्रवेश कर चुकी है। तुम कुछ भी इससे पूछो, तुम्हारे हर सवाल का जवाब इसके पास है।"

वह व्यक्ति बोला, "कम्प्यूटर जी यह रहा आपके लिए पहला सवाल, चवन्नी के लिए। सवाल है, बैंक से कोई लोन लेता है तो उस लोन को चुकाता कौन है?"

सवाल खत्म होने के पहले ही कम्प्यूटर की स्क्रीन पर उभरा, "जिसने लोन लिया है लोन उसी को चुकाना पड़ता है।"

उस व्यक्ति ने कहा, "एकदम गलत जवाब। बैंक से अगर कोई गरीब किसान हजार-दस हजार रुपए लोन लेता है तो उसे ऊंची ब्याज के साथ चुकाना पड़ता है, पर सत्ता का करीबी अगर बैंकों से लाख-दस लाख करोड़ के लोन लेता है तो खुद बैंक उस लोन को चुकाता है। कम्प्यूटर जी यह रहा आपके लिए दूसरा सवाल, पूरी अठन्नी के लिए। सवाल है पेड़ों को काटना अच्छा है या गलत?"

इस बार स्क्रीन पर बफरिंग वाली चकरी घूमने लगी। कुछ पल सोचने के बाद कम्प्यूटर बोला, "पेड़ काटना बुरी बात है, इससे पर्यावरण को हानि होती है।

"फिर गलत!" व्यक्ति बोला, "अगर मोहल्ले के पेड़ को ट्रिम भी करो तो पुलिस पकड़ लेगी पर मेट्रो शेड, हाइवे, खदान के नाम पर पूरा जंगल भी काट लो तो वह अच्छी बात है। कम्प्यूटर जी आप अच्छा नहीं खेल रहे हैं। चलिए आपके लिए यह तीसरा सवाल, पूरे सवा रुपए के लिए। सवाल है, अगर कोई इंसान जिस पेड़ की डाल पर बैठा है, उसी डाल को काट रहा है तो क्या उसे क्या कहोगे?

कम्प्यूटर में उभरा, "कालिदास!"

"एक बार फिर गलत! कालिदास उसका पुराना नाम था। उसे अब भारतीय-मीडिया पुकारते हैं। जिस लोकतंत्र के बगैर स्वतंत्र मीडिया का अस्तित्व ही नहीं है, आज भारतीय मीडिया उसी लोकतंत्र को खत्म करने पर आमादा है। आपके लिए आखिरी सवाल पूरे दो रुपए का। सवाल है, कोर्ट में सुनवाई के वक्त न्यायाधीश के लिए सबसे महत्वपूर्ण चीज क्या होती है?"

कम्प्यूटर बोला, " किसी न्यायाधीश के लिए सबसे महत्वपूर्ण है न्याय!"

" गलत-गलत-गलत! कोर्ट में सुनवाई के वक्त न्यायाधीश के लिए सबसे महत्वपूर्ण चीज होती है पोस्ट रिटायरमेंट बेनेफिट।" उस व्यक्ति ने कहा और फिर सैम की ओर मुड़ कर बोला, "इस चैट-जीपीटी से डर पढ़े-लिखे लोगों को है। जब तक हम स्कूल के पैसे से धर्म-स्थान और मूर्तियां बनाते रहेंगे, जब तक देश में वैज्ञानिक, शिक्षकों से ज्यादा बाबाओं के आसपास भीड़ जमेगी तब तक आपका चैट-जीपीटी हमारा बाल भी बांका नहीं कर सकता।"

यह सुनते ही अचानक आसमान से फूल बरसने लगे। एक आलौकिक रोशनी चारों ओर फैल गई। वहां एक दिव्य-पुरुष अवतरित हुए और उन्होंने भक्त के हाथ को थामकर कहा, "हम तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हुए! ये पढ़े लिखों की दुनिया, ये अक्लमंदों की महफिल तेरे काम की नहीं, तुम्हारा स्थान तो स्वर्ग में है। मूर्खों के स्वर्ग में स्वागत है भक्त!"

कहा जाता है कि इस प्रकार चैट-जीपीटी के बुरी तरह से पिटने के बाद सैम अल्टमैन ने पायनियर बिल्डिंग के बाहर "जीपीटी-चाट भंडार" खोल लिया।

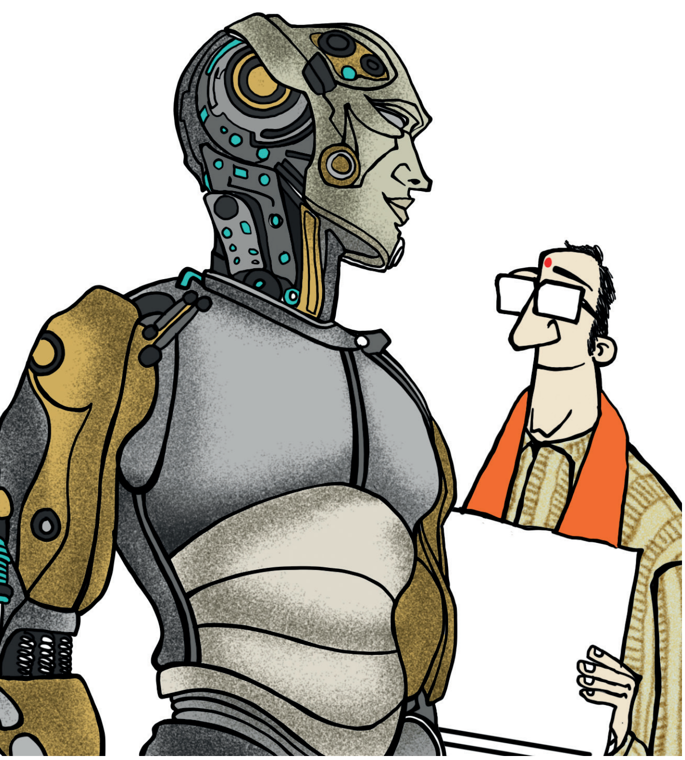

सोरित / सीएसई

दोस्ती की परंपरा

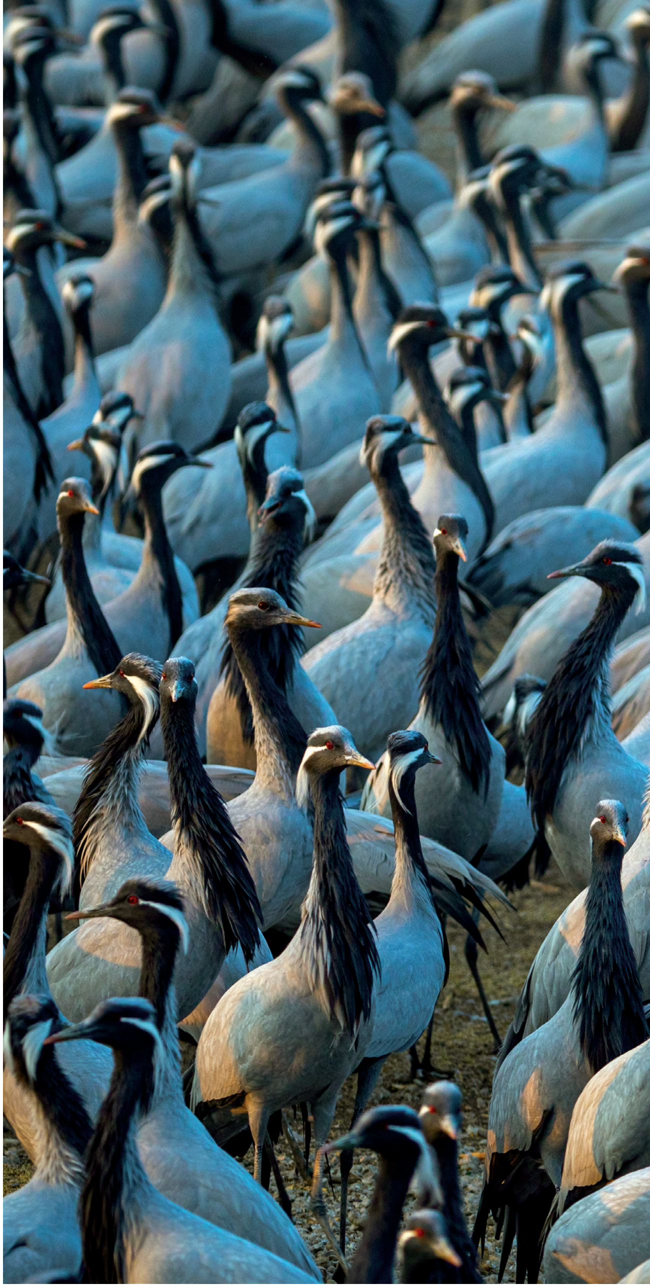

जैसा नाम, वैसा काम। यह कहावत राजस्थान के जोधपुर जिले में फलौदी के पास बसे छोटे-से गांव खीचन में एकदम सटीक बैठती है। यह गांव परिंदों को लुभाने और उनसे दोस्ती के लिए मशहूर है। पौ फटने के साथ ही कुरजां (डेमोइसेल क्रेन) की आवाज गांव में गूंजने लगती है और इसी चहचहाहट से गांव वालों की आंख खुलती है। ये पक्षी गांव में बने चुग्गा घर में दाना चुगने आते हैं। मध्य एशिया से लगभग 5,000 किलोमीटर की दूरी तय करके ठंड में प्रवास (सितंबर से मार्च) के लिए गुजरात और राजस्थान पहुंचने वाले इन विदेशी मेहमानों के लिए चुग्गा घर में सैकड़ों किलो दाना डाला जाता है।

गांव के लोगों का पक्षियों से यह आत्मीय रिश्ता चार दशक पहले बना और समय के साथ प्रगाढ़ होता गया है। 1979 में इसकी शुरुआत स्थानीय निवासी रतन लाल मालू ने कौवों और कबूतरों को खुले मैदान में दाना डालकर की थी। तब से दाने और पक्षियों की संख्या में लगातार इजाफा हो रहा है। ग्रामीणों ने 1983 तक पक्षियों को कुत्तों के हमले से बचाने के लिए चुग्गा घर की चारदीवारी और दाना रखने के लिए भंडारगृह बना दिया। तभी से गांव में स्थानीय जैन समुदाय की मदद से पक्षियों को दाना डालने की परंपरा जारी है। *डाउन टू अर्थ* के फोटो पत्रकार **विकास चौधरी** ने इस अनोखी परंपरा को तस्वीरों में कैद किया

प्रवास ▶
कुरजां मध्य एशिया की कड़ाके की ठंड से बचने के लिए इस मौसम में भारत और अफ्रीका में प्रवास के लिए रुख करते हैं। राजस्थान और गुजरात का दलदली क्षेत्र उनकी पसंदीदा जगह है। हालांकि मध्य एशिया की तरह यहां ये अंडे नहीं देते। दुनियाभर में इस पक्षी की आबादी करीब ढाई लाख है। सर्दियों के मौसम में ये बड़ी संख्या में भारत में डेरा डालते हैं

चुग्गा घर

खीचन गांव में करीब 5,000 वर्गमीटर के मैदान को चुग्गा घर में तब्दील किया गया है। करीब चार दशकों से यहां परिंदों के आने का सिलसिला जारी है। पक्षी यहां बड़े ही अनुशासनात्मक ढंग से दाना चुगते हैं। पक्षियों का एक झुंड दान चुगने बाद उड़ जाता है। इसके तुरंत बाद दूसरा झुंड पहुंच जाता है

दाने की खोज

खीचन भले ही कुरजां पक्षियों के लिए जाना जाता हो लेकिन ग्रामीणों का प्यार केवल इस पक्षी तक ही सीमित नहीं है। यहां पूरे साल पक्षियों को दाना डाला जाता है। पानी और दाने की उपलब्धता के कारण पूरे साल यहां पक्षियों का तांता लगा रहता है। ठंड में तो दाने की खपत अधिकतम प्रतिदिन 1,000 किलो तक पहुंच जाती है

तालाब में दिनभर

गांव के पश्चिमी सीमा पर बना तालाब कुरजां की प्यास बुझाता है। दाना चुगने के बाद पक्षी अलग-अलग झुंडों में यहां पहुंचते हैं और सर्दियों की गुनगुनी धूप का आनंद लेने के बाद शाम तक रात्रि प्रवास के लिए अपने-अपने ठिकानों में पहुंचने लगते हैं

दोपहर तक डेरा

कुरजां सूर्य की पहली किरण के साथ अपने शीतकालीन प्रवास स्थल से खीचन की उड़ान भरते हैं। इन पक्षियों को देखने के लिए सितंबर से मार्च के दौरान यहां स्थानीय पक्षी प्रेमियों, विदेशी पर्यटकों और वन्यजीव फोटोग्राफरों का जमघट लगा रहता है

समर्पित सेवक

खीचन निवासी सेवाराम माली परिहार पिछले 25 वर्षों से चुग्गा घर की देखरेख में लगे हैं। उनका घर चुग्गा घर के नजदीक ही है। दिहाड़ी मजदूरी करने वाले सेवाराम को पक्षियों की सेवा करने में आनंद मिलता है। उनका कहना है कि गांव में बिजली के खुले तार पक्षियों के लिए खतरा बन गए हैं। इनमें उलझकर बहुत से पक्षी घायल हो रहे हैं और लगातार मारे जा रहे हैं। पक्षियों को बचाने के लिए वह तारों को भूमिगत करने के प्रयासों में जुटे हैं। बिजली विभाग ने 2021 में उन्हें एक एंबुलेंस भेंट की थी। इसकी मदद से वह करीब 2,500 पक्षियों का इलाज कर चुके हैं

सेहतवाली गाजर काली

पोषक तत्वों से भरपूर काली गाजर धीरे-धीरे खेतों और बाजारों से गायब होती जा रही है

चैतन्य चंदन

आपने अपने आसपास के बाजारों में अधिकतर लाल या नारंगी रंग की गाजर बिकती देखी होगी। लेकिन क्या आपने काले रंग की गाजर देखी है? काली गाजर का वैज्ञानिक नाम *डॉकस कैरोटा* है। यह मुख्यतः भारत सहित पूर्वी एशिया महाद्वीप के देशों में पाई/उगाई जाती है। हालांकि पिछले कुछ दशकों से लाल गाजर की लोकप्रियता ने इसके अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया है।

मुझे याद है कि बचपन में जब हम ठंड के मौसम में सब्जी बाजार जाते थे, तो लाल गाजर कम ही दिखती थी। उस समय हमारे घर पर अमूमन काली गाजर का हलवा ही बनता था। हम लोग इसे कच्चा भी खाते थे। परंतु पिछले कई वर्षों से यह बाजार से लगभग गायब ही हो गई है। हालांकि इस वर्ष जब मुझे लखनऊ जाने का मौका मिला तो वहां एक मिठाई की दुकान पर मैंने इसका हलवा देखा तो बचपन की सारी यादें ताजा हो गईं और मैं उसे खाए बिना नहीं रह पाया।

काली गाजर मुख्यतः गहरे बैंगनी (पर्पल) रंग की होती है। इसे काटने पर इसका अंतर्भाग हल्का पर्पल अथवा पीले रंग का होता है। इसका स्वाद अन्य गाजरों की तुलना में अधिक मीठा होता है। यही वजह है कि प्राचीन काल में इसके रस का इस्तेमाल शर्बत और हलवा बनाने में किया जाता था।

काली गाजर के बीजों को सितंबर-अक्टूबर के महीने में बोया जाता है और इसकी फसल लगभग

काली गाजर का हलवा कई पोषक तत्वों से भरपूर होता है

फोटोः विकास चौधरी / सीएसई

तीन महीने में तैयार हो जाती है। वर्ष 2016 में पंजाब कृषि विश्वविद्यालय ने काली गाजर की एक नई प्रजाति विकसित की, जो पारंपरिक प्रजाति से लंबी है और एक एकड़ खेत में 196 किलो तक उपज दे सकती है। इसका नाम "पंजाब ब्लैक ब्यूटी" है।

काली गाजर का उत्पत्ति स्थल पूर्वी एशिया का अफगानिस्तान माना जाता है। वर्ल्ड कैरेट म्यूजियम के मुताबिक, काली गाजर को सर्वप्रथम नौवीं शताब्दी में मध्य एशिया में उगाया गया था। दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जब अरब का विस्तार हो रहा था, तब इसके बीज को अंडलुसिया (वर्तमान में स्पेन) लाया गया। वहीं से यह उत्तरी यूरोप के अन्य क्षेत्रों में फैली। ऐसी मान्यता है कि गाजर की सर्वाधिक लोकप्रिय प्रजाति लाल और नारंगी गाजर की उत्पत्ति दरअसल काली और सफेद गाजर के म्यूटेशन से हुई है। वर्तमान में यह मुख्य रूप से अफगानिस्तान सहित भारत, पाकिस्तान, ईरान और तुरकीये में उगाई जाती है।

गाजर की इस प्रजाति के संरक्षण के लिए दक्षिणी स्पेन के मलागा में हर साल "द कैरट मोरा ऑफ क्यूवस बेजास" नामक महोत्सव आयोजित किया जाता है, जिससे न सिर्फ वहां के लोगों, बल्कि पर्यटकों में भी इसके प्रति आकर्षण पैदा किया जा सके। यह आयोजन हर साल दिसंबर के पहले रविवार को होता है। वर्ष 2006 से शुरू किए गए इस महोत्सव में काली गाजर और उससे बने खाद्य पदार्थों और औषधियों की बिक्री की जाती है।

इसका गहरा रंग इसमें पाए जाने वाले एक रासायनिक तत्व एंथोसाइनिन की वजह से होता है। यही वजह है कि इससे बनने वाले चूर्ण का उपयोग भोजन में खाद्य रंगों के तौर पर किया जाता है। इसके अलावा इसके चूर्ण का उपयोग खाद्य पदार्थों में पोषक तत्वों को संतुलित करने के लिए भी किया जाता है, क्योंकि काली गाजर में प्रचुर मात्रा में विटामिन सी और विटामिन ई मिलता है।

औषधीय गुण

काली गाजर में फाइबर, पोटैशियम, विटामिन-ए, विटामिन-सी, मैंगनीज, विटामिन-बी जैसे कई पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसका नियमित सेवन हमें नाना प्रकार की बीमारियों से बचाकर रखता है। साथ ही इसका उपयोग एक औषधि के तौर पर करने से यह कई रोगों के उपचार में भी कारगर साबित हुआ है। समय-समय पर काली गाजर के औषधीय गुणों को उद्घाटित करने के लिए कई शोध भी होते रहे हैं।

वर्ष 2004 में मेरी एन लिला द्वारा किए गए एक अध्ययन "एंथोसायनिंस एंड ह्यूमन हेल्थः एन इन विट्रो इन्वेस्टिगेटिव अप्रोच" बताता है कि काली गाजर में पाया जाने वाला एंथोसायनिन शरीर में कैंसर कोशिका बनने की गति को धीमा कर देता है। यह अध्ययन *जर्नल ऑफ बायोमेडिसिन एंड बायोटेक्नोलॉजी* में प्रकाशित हुआ था। वर्ष 1999 में *ऑस्ट्रेलियन एंड न्यूजीलैंड जर्नल ऑफ ओप्थलमोलॉजी* में प्रकाशित एक शोध, जिसका शीर्षक "*कैरट्स, कैरोटीन एंड सीइंग इन द डार्क*" है, के परिणाम बताते हैं कि इसमें पाया जाने वाला बीटा कैरोटीन आंखों की रोशनी बढ़ाता है।

फ्रांटियर्स इन न्यूट्रिशन नामक जर्नल में वर्ष 2017 में प्रकाशित एक अध्ययन *"मैनेजिंग रयुमाटॉइड आर्थराइटिस विद डायटरी इंटरवेंशंस"* के अनुसार, काली गाजर में पाए जाने वाले एंटी ऑक्सीडेंट्स और एंटी इंफ्लेमेटरी गुण मनुष्यों में आर्थराइटिस की समस्या पैदा नहीं होने देता। वहीं *जर्नल ऑफ मेडिसिनल केमिस्ट्री* में वर्ष 2018 में प्रकाशित एक शोध *"एंटी-डायबेटिक फेनोलिक काम्पाउंड्स ऑफ ब्लैक कैरेट"* के अनुसार, इसका सेवन रक्त में शर्करा की मात्रा को नियंत्रित रखता है।

व्यंजन

काली गाजर का हलवा

सामग्री :

काली गाजरः किलो

चीनीः 2 कप

फुल क्रीम दूधः 2 कप

देसी घीः 4 बड़ी चम्मच

इलाइची पाउडरः छोटी चम्मच

कंडेंस्ड मिल्क/मावाः 150 ग्राम

काजू, बादामः 50 ग्राम

विधि : गाजर को अच्छी तरह से धोकर, छीलकर कद्दूकस कर लें। अब एक कड़ाही में घी डालकर गरम कर लें। अब इसमें कद्दूकस किया हुआ गाजर और दूध डालकर गाजर के नरम होने तक पकाएं। इसके बाद मिश्रण में चीनी और मावा डालकर अच्छे से पकाएं। जब कड़ाही के किनारे घी छोड़ने लगे, तो चूल्हा बंद करके हलवा को थोड़ा ठंडा होने के लिए रख दें। लीजिए तैयार है काली गाजर का स्वादिष्ट हलवा। इसे काजू और बादाम से सजाकर परोसें।

कहां मिलेगा

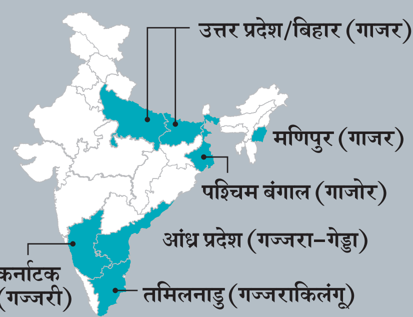

पुस्तक

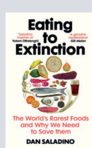

ईटिंग टू एक्सटिंक्शन

लेखकः डैन सैलाडीनो

प्रकाशकः विंटेज पब्लिकेशन

मूल्यः ₹479 **पृष्ठः** 464

यह पुस्तक हमें दुनियाभर से विभिन्न प्रकार के लुप्तप्राय खाद्य पदार्थों के ऐसे दौर में ले जाती है, जिसमें न सिर्फ प्रत्येक भोजन के इतिहास की जानकारी मिलती है, बल्कि हमारे पूर्वजों और उन लोगों की कहानियां भी बताती है जो इन खाद्य पदार्थों को विलुप्त होने से बचाने की कोशिश कर रहे हैं।

जलवायु के नए शिकार

जो परिवार खुद के उपभोग के लिए भोजन उगाते हैं वो सबसे सेहतमंद होते हैं, लेकिन अप्रत्याशित जलवायु जल्द इस प्रवृत्ति को बदल देगी

रिचर्ड महापात्रा

अब यह बात किसी से छिपी नहीं है कि चरम अथवा अप्रत्याशित मौसमी घटनाओं से किसानों की आय को नुकसान पहुंचता है। जलवायु परिवर्तन से होने वाली इस आर्थिक क्षति को व्यापक स्वीकार्यता मिल चुकी है। किसान ही जलवायु परिवर्तन को सबसे पहले महसूस करता है जो अंततः समग्र किसी उत्पादन को प्रभावित करता है और खाद्य मुद्रास्फीति को बढ़ाने में योगदान देता है। खाद्य पदार्थों की महंगाई का सीधा मतलब है उपभोग में कमी और पोषण सुरक्षा पर नकारात्मक प्रभाव।

बहुत से किसान परिवार खुद के उपभोग के लिए खाद्यान्न उपजाते हैं। इन किसान परिवारों ने इस तथ्य की पुष्टि की है- जो खुद का उगाया खाते हैं, वो सबसे सेहतमंद होते हैं। भारत जैसे देशों में जहां कुपोषण अधिक है और जहां खाद्य असुरक्षा बढ़ रही है, वहां ऐसे परिवारों ने घरेलू उत्पादन व्यवस्था के जरिए खुद को इन संकटों से खुद को बचाकर रखा है। बहुत से अध्ययन भी बताते हैं कि ये परिवार बाजार के उतार-चढ़ाव से अप्रभावित हैं। इसी के चलते ये सेहतमंद भोजन को प्राप्त करते हैं। कह सकते हैं कि ये परिवार मुद्रास्फीति से प्रभावित नहीं होते।

लेकिन अब इस बात पर गंभीर बहस भी होने लगी है कि कैसे जलवायु परिवर्तन जनित चरम मौसमी घटनाएं इन परिवारों पर असर डाल सकती हैं। हमें पोषण आवश्यकता और घरेलू खाद्य उत्पादन के बीच संबंध समझने के साथ ही यह भी जानना जरूरी है कि मौसम के उतार-चढ़ाव का क्या इससे कोई नाता है।

इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट (आईएफपीआरआई) का एक हालिया अध्ययन मौसमी के प्रभावों और घरेलू खाद्य उत्पादन व्यवस्था के बीच संबंध की पड़ताल करता है। शोधकर्ता हिरोयूकी ताकेशिमा, सुनील सरोज और अंजनी कुमार ने ग्रामीण स्तर पर परिवारों के उत्पादन और उपयोग का अध्ययन किया और इसे स्थानीय मौसम की स्थिति से जोड़ा। अध्ययन स्थापित करता है कि लोग अधिक उपभोग के लिए भोजन उपजा रहे हैं और इस तरह पोषण स्तर में सुधार कर समग्र खाद्य सुरक्षा हासिल कर रहे हैं। अध्ययन के अनुसार, "घर के लिए अनाज उपजाने पर प्रति परिवार हर माह औसतन 12.184 रुपए अधिक उपभोग पर खर्च हो रहा है।" यह प्रवृत्ति केवल अनाज तक सीमित नहीं है। इस स्थिति में दलहन, डेरी उत्पाद, सब्जियों और फल भी उपभोग भी बढ़ जाता है। इसके अलावा अध्ययन यह भी स्थापित करता है कि बढ़ा हुआ उपभोग बच्चों में स्टंटिंग और अंडरवेट की स्थितियों को भी सुधारता है। साथ ही महिलाएं सामान्य बॉडी मास इंडेक्स प्राप्त करती हैं। यह प्रवृति दूरस्थ गांवों में अधिक देखी जा रही है।

घर के लिए उपजाने के "सकारात्मक प्रभाव" उल्लेखनीय रूप से तब और बढ़ जाते हैं, जब मौसम सामान्य के करीब होता है। जलवायु और उपभोग के बीच यह सबसे महत्वपूर्ण अंतर्संबंध है जिसे अध्ययन स्थापित करता है। अगर बरसात सामान्य से एक मानक विचलन (स्टैंडर्ड डेविएशन) के करीब है तो अनाज का उपभोग 12.282 रुपए तक बढ़ जाएगा। इसी तरह अगर तापमान सामान्य से एक मानक विचलन के आसपास है तो उपभोग में 5.723 रुपए की बढ़त होगी। इसका अर्थ यह है कि सामान्य मौसम सभी शारीरिक लाभ बढ़ाएगा।

इसका अर्थ यह भी है कि अगर परिवार वितरीत मौसम की स्थितियों को महसूस करेगा तो खाद्य और पोषण सुरक्षा पर नकारात्मक असर होगा। साथ ही सामान्य मौसम के बिना ऐसे परिवरों को बाजार का निर्भर रहना होगा और भोजन पर पहले से अधिक खर्च करना पड़ेगा। इससे उनके आर्थिक हितों पर असर पड़ेगा।

अंततः कह सकते हैं कि अब तक जलवायु संकट और आधुनिक बाजार आधारित कृषि व्यवस्था से अछूते रहे इन खाद्य उत्पादकों को जलवायु परिवर्तन अपनी गिरफ्त में लेने को बेताब है, इसलिए खाद्य उत्पादन की इस व्यवस्था को बड़ी सावधानी से देखने की जरूरत है।

RESIDENTIAL TRAINING

COMPRESSED BIOGAS (CBG)

Potential, Technology, Policy, Operations and Economics

COURSE DATES
APRIL 11-13, 2023

Last date to apply
APRIL 2, 2023

Venue
ANIL AGARWAL ENVIRONMENT TRAINING INSTITUTE (AAETI), NIMLI, RAJASTHAN

Language of instruction
ENGLISH

India aims to attain 'net zero emissions' status by 2070 and reduce the emissions intensity of its GDP by 45 per cent by 2030. To achieve these targets, the nation needs a clear strategy – and tapping into the country's surplus biomass and organic waste to generate clean fuels such as Bio-CNG (Compressed Natural Gas) could certainly be explored as a key element of such a strategy.

According to the Ministry of New and Renewable Energy (MNRE), India's Bio-CNG production potential is estimated at around 62 million metric tonne (mmt). Of this, 15 mmt per annum will be tapped by the Sustainable Alternative Towards Affordable Transportation (SATAT) scheme by 2024.

Several other policies and initiatives have been developed to expedite the implementation of Bio-CNG projects in India: these include the MNRE's Waste to Energy programme, the Swachh Bharat Mission (SBM), and the Galvanizing Organic Bio-Agro Resources (GOBAR)-DHAN scheme.

Centre for Science and Environment (CSE) is offering a tailor-made three-day residential training programme on 'Bio-CNG: Potential, Technology, Policy, Operation and Economics'. The high-impact training has been conceived to provide an end-to-end solution to design and install a Bio-CNG plant that aligns with the principles of circular economy, energy transition and sustainable development.

The programme is open to government officials, regulators, renewable energy nodal agencies, urban development authorities, civil society organisations, start-ups, researchers, private sector consultants and individual practitioners.

COURSE FEE

» **Government Officials:** Registration fee is waived for Central and State Government officials*

» **Indian Participants:** ₹21,000

» **Foreign Participants:** US $300

**Cost of travel to Delhi and back for the nominated officials to be borne by the nominating government authority*

The course fee is inclusive of travel from Delhi to the training institute, accommodation, food, resource person, and training kit.

A discount of up to 50 per cent is available for NGOs, Academic Institutions, students and farmers.

FOR FURTHER DETAILS, PLEASE CONTACT THE COURSE COORDINATOR

RAHUL JAIN, Deputy Programme Manager, School of Clean Energy Transitions, AAETI, Renewable Energy Unit, CSE
Mobile: +91 8901448131 | Email: rahul.jain@cseindia.org

R.N.I. NO. DELHIN/2018/76697 POSTAL REGN. NO. DL(S)-17/3536/2022-24
ISSN 2582-0168. Licensed to Post without pre-payment U(S)-104/2022-24 at Lodhi Road HO, New Delhi-110003.
Published on 27th of previous month. POSTED ON: 1-2 of the same month. Total pages: 60